सेट्ठ थेरीगाथा समग्ग

SEṬṬHA THERĪGĀTHĀ SAMAGGA



भारतीय मनीषा सूत्रम

शिवशंकर त्रिपाठी

सेट्ठ थेरीगाथा समग्ग

(हिन्दी-अनुकाव्य सद्धिं)

SEṬṬHA THERĪGĀTHĀ SAMAGGA

[HINDĪ ANUKĀVYA SADDHIM]

•

–शिवशंकर त्रिपाठी

सेट्ठ थेरीगाथा समग्ग

(हिन्दी-अनुकाव्य सद्धिं)

SEṬṬHA THERĪGĀTHĀ SAMAGGA

[HINDĪ ANUKĀVYA SADDHIM]

•

अनुकाव्य

शिवशङ्कर त्रिपाठी

SHIV SHANKER TRIPĀTHĪ

भारतीय मनीषा-सूत्रम्

दारागञ्ज, प्रयागः

प्रथम संस्करणम् : संवत् २०५९ विक्रम

प्रकाशनम् : भारतीय मनीषा-सूत्रम्
दारागञ्ज, इलाहाबाद-२११००६

मूल्यम् : राजसंस्करणम् ४००/-
सुलभसंस्करणम् ३००/-

मुद्रक : एकेडमी प्रेस, दारागंज, इलाहाबाद

आत्मकथन

प्राच्य चिन्तन-धारा काव्य की आत्मा के संदर्शन नारी रूप में प्रतिबिम्बित स्वीकारती रही है, नारी-प्रकृति में पुरुष-प्रकृति की अपेक्षा अधिक संवेदनशीलता एवं काव्य-प्रेरणा का उत्स है। ब्रह्मा ने इसीलिए सरस्वती को नारी-रूप में बनाया। वही सरस्वती वाणी है, वाक् है जिसकी प्रेरणा से कवि-प्रतिभा जनमती है। ऋग्वेद के वागाम्भृणी सूक्त में नारी-शक्ति की श्रेष्ठता प्रतिष्ठित होती है जहां वाक् की गर्वोक्ति है-प्राण-धारण, श्रवण, दर्शन, भोजन आदि सभी कार्य मेरी ही सहायता से सम्पन्न होते हैं। मुझे न माननेवाला निश्चयत: क्षीणता को प्राप्त हो जाता है। जिसके आश्रय को देवता एवं मनुष्य प्राप्त हुआ करते हैं, मैं उन सबकी उपदेशिका हूँ, मैं जिसे चाहूँ, वह मेरी कृपा से बलवान्, मेधावी तथा कवि बन जाता है। (ऋक्०/१०:१३५/४-५)। यह वाक् रूप नारी शक्ति जगत् को जीवन्त रखती है। वाक् यदि पुरुष को बलवान् मेधावी तथा कवि बना सकती है तो समरूपा और प्रकृतिवाली नारी में कवि-प्रतिभा का आधान क्या नहीं कर सकती ? वाक् ने नारी को कवित्व शक्ति प्रदान की। पुरुष भी उसी वाक् की कृपा से कवि-प्रतिभा प्राप्त करने में समर्थ रहा है, कवित्व शक्ति पुरुष-नारी में विभेद नहीं करती।

काव्य मीमांसा के रचयिता महाकवि राजशेखर ने लिखा है-पुरुषों के समान स्त्रियां भी कवि हो सकती हैं। कवित्व-शक्ति, संस्कार-विशेष से प्राप्त होती है। यह संस्कार आत्मा में नित्य-सम्बन्ध अथवा समवाय-सम्बन्ध से

रहता है। उसके लिए पुरुष अथवा स्त्री आदि का भेद-भाव नहीं है। कितनी ही राजकुमारियां, राजामात्यों की पुत्रियां, गणिकाएं एवं नटिनियां शास्त्रज्ञान से स्फीत-प्रतिभा-सम्पन्न तथा कवयित्रियां सुनी जाती हैं, देखी जाती हैं (पुरुषवत् योषितोऽपि कवी भवेयुः। संस्कारो ह्यात्मनि समवेति, न स्त्रैणं पौरुषं वा विभागमपेक्षते। श्रूयन्ते दृश्यन्ते च राजपुत्र्यो महाभात्य दुहितरो गणिकाः कौतुकिभार्याश्च शास्त्र प्रहत बुद्धयः कवयश्च।–काव्यमीमांसा (अध्याय १०)। गौतम बुद्ध ने अपनी घोषणा में कहा था कतिपय नारियां नैतिकता एवं बौद्धिकता की दृष्टि से श्रेष्ठ हैं (इत्थीपि हि एक चीया सेय्यो पोषा, जनाधिप। मेधावती, सीलावती.....।। –संयुत्तनिकाय/१) वात्स्यायन ने कामसूत्र में गणिकाओं, राजकुमारियों और आमात्य-पुत्रियों की बुद्धिमती तथा शास्त्रज्ञान-पण्डिता के रूप में चर्चा की है (सन्त्य पिखलु शास्त्र-प्रहत-बुद्धयो गणिका, राजपुत्र्यो, महामात्य-दुहितरश्च-कामसूत्र।१-३-१२)। मज्झिमनिकाय में कहा गया है कि स्त्री, पुरुष, श्रमण, ब्राह्मण कोई भी कर्म से महाप्राज्ञ बन सकता है (इध पन, माणव, एकचो इत्थि वा पुरिसो वा समणं वा ब्राह्मणं वा उपसंकभित्वा होति.....सोतेन कम्मेन.....महापञ्ञो होति)। इतना ही नहीं ललित विस्तर में राजकुमार सिद्धार्थ ने अर्थ-गुणसनाथ काव्य-रचना में दक्ष कन्या को भार्या-योग्य कहा है। (ललित विस्तार/५)। अस्तु।

स्त्रियां भी पुरुषों की भांति शास्त्र-ज्ञान-दक्षा एवं काव्य-रचना में भी समान रूप से प्रवृत्त रही हैं। इस तथ्य का प्रमाण हमें सर्वप्रथम ऋग्वेद में प्राप्त होता है। विश्ववारा अग्नि का स्तवन करते हुए कहती है–हे अग्ने! तुम जब प्रज्वलित होकर तेजोमय होते हो, मैं तुम्हारे उस दिव्य तेज का स्तवन करती हूँ, तुम बलवान हो, प्रजाजन के लिए सुखों की वर्षा करते हो। (ऋक्० : ५/

२८-४)। अपाला ने इन्द्र से स्तुति करती है–हे इन्द्र! मेरे पिता के मरुस्थल रूप खेत, पिता का केश-रहित मस्तक और मेरे शरीर को उर्वर बनाते हुए उन्हें रोम से युक्त कर दो। (ऋक्० : ८/९१-६) शची पौलोमी भी अपनी अभिलाषा-पूर्ति व्यक्त कर रही है–मैं इस घर के मस्तक-सदृश तथा ध्वजास्वरूप हूँ। अपने पति को आकर्षित कर उनके मधुर वचन श्रवण करती हूँ। वह मुझे सर्वोपरि स्वीकार मेरे सभी कार्यों में सहमति प्रकट करते हैं। मेरे इच्छानुकूल व्यवहार करते हैं। मेरे पुत्र पराक्रमी हैं, मेरी पुत्री अत्यन्त ही रूपवती है, सौभाग्यवती है। सबको मैं अपने शासन में रखती हूँ। पति भी मेरा नाम आदर सहित लेते हैं। (वही : १०:१५९/२-३)। ऋग्वेद में ऋषिकाओं के अन्य सूक्त भी हैं। (मण्डल १:१७९, १०:८५, १:१० आदि)

वैदिक साहित्य के पश्चात् बौद्ध पालि साहित्य पर यदि दृष्टिपात किया जाय तो अनुभव होता है कि इस साहित्य में थेरिगाथा नामक संग्रह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गीत काव्य का यह विश्व साहित्य में एक अनुपम संग्रह है। इन गीतों में नारी-प्रकृति-जन्य संवेदनशीलता, जीवनानुभूति की सुकोमल भावनाएँ अभिव्यक्त हैं। इस गीत संग्रहरूप थेरिगाथाओं की रचयित्रियों में राजकुमारियां, श्रेष्ठि-कन्याएं, सेनापति-पुत्रियां एवं गणिकाएं तथा अन्य सामान्य वर्गों की हैं।

प्रस्तुत कृति 'सेट्ठ थेरी गाथा समग्ग' छह थेरियों (पालि-कवयित्रियों) अम्वपाली, रोहिनी, चापा, सुन्दरी, सुभाकम्मारधीतु, सुमाजीवकम्ब एवं वनिका का काव्य (मूल पालि गाथाएं, हिन्दी अनुकाव्य-संग) संकलन है। अनुकाव्य में कवयित्रियों के अभिव्यक्त-भावों का यथाशक्ति अनुरक्षण प्रयास है।

थेरियों (कवयित्रियों) का लघु परिचय अन्त (परिशिष्ट-भाग) में समायोजित किया गया है।

विश्वास है कृति पालि साहित्य के अध्येताओं और हिन्दी साहित्यानुरागियों के लिए यत्किञ्चित तो प्रदायिका बनेगी।

ऋषि-पञ्चमी —शिवशंकर त्रिपाठी
संवत् २०५९ विक्रम

दारागंज, इलाहाबाद-२११००६
दूरभाष : ०५३२-२५०७९०४

उपक्रम

•

खुद्दक-निकाय के दो ग्रंथ थेर-थेरीगाथाएँ जहाँ एक ओर तत्कालीन सामाजिक गीवन का चित्रण प्रस्तुत करते हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी साहित्यिक विशेषता के लिए भी पालि-साहित्य ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की अमूल्य निधि हैं। दोनों में क्रमशः भिक्षुओं द्वारा प्रकट अंतर्जगत एवं बाह्य जगत के अनुभव तथा भावनाओं से संबंधित उद्गार संकलित हैं। जीवन के विविध क्षेत्रों से प्राप्त आत्मानुभूतिजनित शब्दमय प्रेरणोद्रेक ही कविता है और उसी में सहज, स्वाभाविक गतिमयता तथा गेयमयी स्वर-लहरी का संयोग गीत को जन्म देता है। वस्तुतः सहृदय-हृदय अपनी व्यक्तिगत सीमा में तीव्रातितीव्र सुख-दुःखमयी भावानुभूति को स्वरों के सुंदर संयोग से मधुर शब्दों में प्रकट करने के लिए काव्य की 'गीत' विधा का ही आश्रय ग्रहण करता है। क्योंकि 'गीत' में गेयता के कारण भावों की प्रेषणीयता को सुअवसर मिलता है, पाठक गीतकार की भावानुभूति के साथ सहज ही तादात्मय स्थापित करने में भी इसी कारण सफल होता है। श्रीमती महादेवी वर्मा के शब्दों में—'सुःख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेषतः गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।' (महादेवी का विवेचनात्मक-गद्य। पृष्ठ १४१) रागात्मकता, वैयक्तिकता एवं अनुभूति-प्रधान काव्य-रचना को ही हम गीत-काव्य की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं। भावों की तीव्र तथा गहनातिगहन गति के दर्शन जितना स्पष्ट मधुर गेय पदों में होता है, वह अन्यत्र प्राप्त होना असंभव है, गेयत्व और सघन-आत्मानुभूति जिस कविता में एक साथ पायी

जाती है, उसी को गीत काव्य मानना चाहिए।[१] गीत में प्रायः एक ही भाव, सघनतम-अनुभूति से संजीवन ग्रहण करके अपने लघु-कलेवर[२] में अतिशय प्रभावक बनकर कवि के अन्तर्जगत में सम्पोषित एवं संप्रेषित हो अभिव्यंजना का माध्यम हो जाता है, जो अपनी रसमयता के फलस्वरूप पाठक के लिए तादात्मय स्थापित करने की स्थिति का अन्वेषण करते हैं। इस स्थिति से थेर-थेरीगाथाओं में भिक्षु-भिक्षुणियों ने अपनी अनुभूतिंयों को जिस गहनता और स्वाभाविक रीति से प्रकट किया है, उनको पढ़कर प्रत्येक सरस-हृदय उन उदगारों के साथ तादात्मय स्थापित किए बिना नहीं रह सकता। स्वयं महादेवी जी ने थेरगाथा की एक गाथा उद्धृत[३] कर इनकी गाथाओं को उत्प्रेरक मधुर-गीति की कोटि में प्रतिष्ठित किया है--'विरक्त की काल्पनिक ध्यानावस्था का कितना हृदया- वर्जक चित्रण है कि वन में ध्यानमग्न भिक्षु को नीलवर्ण ग्रीवा, सुंदर शिखा-शोभी, चित्र-विचित्र पंखों और सुभग चंचु वाले आकाश में विचरण करने वाले पक्षी अपने मधुर कूंजन द्वारा आनंद की सृष्टि करेंगे।'[४] वस्तुतः गाथा शब्द का अर्थ ही गीत है।

रसमय भावानुभूति की मधुर एवं मृदुलतम गतिमयता का चरमोत्कर्ष गीत

---

१. डॉ० भगीरथ मिश्र-हिंदी गीति-काव्य का विकास (लेख)

२. गौणवस्तु भवेद् गीतिर्भावाभिव्यंजनं कवेः।
लघुकलेवरा गेया सेकभावरसाश्रया।।
—संस्कृत गीति-काव्य का विकास (डॉ० परमानंद शास्त्री)।

३. महादेवी का विवेचनात्मक गद्, पृष्ठ १५१।

४. सुनीलगीवा सुसिखा सुपेखुना,
सुचित्तपत्तच्छदना विहङ्गमा।
सुमंजुदयोसत्थनिता भिगज्जिनो,
ते तं रमेस्संति वनम्हि झायिनं।। —(१९।१।११३९)।

का जीवन है, ऐसी स्थिति में ही स्वतः कोमलतम भाव-स्वर-लहरी पर नृत्य कर उठते हैं और उनके पद-लय के इंगित पर गीतकार की वाणी मुखर होकर श्रेष्ठतम गीतों की सृष्टि करता है। मधुरतम भावाभिव्यक्ति की अतिशयता ही वैशिष्ट्य है—कब मैं गिरि-गह्वरों में निर्द्वन्द्व होकर एकाकी विहार करूँगा, समस्त जगत को विनाशी, अनित्य रूप में समझ पाऊँगा? वह स्थिति कब आयगी, जब मैं अहंकार का त्यागकर, तृष्णा से रहित हो, राग, द्वेष तथा मोह से विरत बनकर काषाय-वस्त्रधारी मुनि के रूप में ससुख विचरण कर सकूँगा? मेरी यह आकांक्षा कब पूर्ण होगी कि मैं आधि-व्याधियों के आगार अनित्य इस शरीर को, जो मृत्यु का ग्रास और जरा से पीड़ित होने वाले हैं, सम्यक् रूप से देखता हुआ, निर्भय-हृदय हो एकाकी विहार करने वाला बन जाऊँगा?[५] यही नहीं, यही तालपुट थेर अपनी इच्छा की चरम परिणति जिन शब्दों में प्रकट करता है, वह अत्यंत उत्प्रेरक एवं हृदयग्राही है—'मैं कब निर्लेप-हृदय बनकर अपने लिए प्रयुक्त दुर्वचनों के श्रवण से उदासीनता का वरण न करूँगा, तथा आत्मप्रशंसा से हर्षातिरेक की स्थिति का दास न रहूँगा, क्या ऐसा शुभ-अवसर मुझे प्राप्त हो सकेगा?' (१९।१।११०३)। इन गाथाओं में स्थविरों के संगीतात्मक सरस-भाषा में स्वानुभूतिप्रवणआत्माभव्यक्ति-परक गीतमयी

---

५. कदा नु हं पब्बतकंदरासु, एकाकियो अददुतियो विहंस्स।
अनिच्चो सव्वबभवं विपस्सं, तं मे इदं ते नु कदा भविस्सति।।
कदा नु हं भिन्न पटंधरो मुनि,
कासाववत्थो अममो निरासो।
रागं च दोसं च तथेव मोहं,
हंत्या सुखी पवनगतो विहस्सं।।
कदा अनिच्चं वधरोगनीडं,
कायं इमं मच्चुजरायुपद्दुतं।
विपस्समानो वीतभयो विहस्सं,
एको वने तं नु कदा भविस्सति।। —(१९।१।१०९४-९६)।

शैली में उनके जीवन-काव्य का उन्मुक्त भावोद्वेलित शाश्वत् गान समाया हुआ है। गीत-काव्य के माध्यम से यहाँ जीवन की सत्याभिव्यक्ति मिलती है—'हृदय तुम्हारे ही कारण कभी ब्राह्मण, कभी क्षत्रिय और कभी राजा बनते हैं, कभी वैश्य तो कभी शूद्र बन जाते हैं एवं तुम्हारे ही कारण देवता भी बन जाते हैं, कभी असुर कभी नारकीय-जन भी बन जाते हैं तथा कभी पशु-तुल्य हो जाते हैं। चित्त तुमने मेरे साथ अनेकधा विश्वासघात किया है, पागल की भाँति तुम प्रलोभन में फँसाते रहे हों। अब मैं तुमको उसी प्रकार अपने वश में कर लूँगा जैसे हस्ती को अंकुश वश में कर लेता है।'[६]

श्रीमती रायस डेविड्स ने कितना सत्य मूल्यांकन किया है—'इन गाथाओं में चित्रित एक ऐसे निर्मय सांस्कृतिक जीवन का बोध हमें होता है, क्लांत-जीवन की कथा है। दुःखानुभूतियों के सहारे जीवंत-पथ की सृष्टि हुई है।'[७]

---

६. त्वंजेवनोचित्त करोसि ब्राह्मणो,
त्वं खत्तियो राजदसी करोसि।
पेस्सा च सुद्दा च भवाम एकदा,
देवत्तनं वा पि तवेव वाहसा।।
तवेव हेतू असुरा भवामसे,
त्वं मूलकं नेरयिका भवामसे।
अथो तिरच्छानगता पि एकदा,
पेतत्तनं वा पि तवेवः वाहसा।।
ननु दुब्भस्ससि मं पुनप्पं नं,
मुहुं मुहं चारणिकं व दस्सयं।
उमत्तकेनेव मया पलोभसि,
किंचा पि ते चित्त विराधितं मया।।
तहज्हं निग्गहेस्सामि योनियो,
हत्थि प्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो।। —(१९।१।११३०-११३३)।

७. Feeling such as lives in these verses is concieable only as the growth of a culture that has won its way through much suffering and to give expression to its Talput has done could only be done by a poet. (Psalms of Brothern, Page XII).

'तालपुट' स्थविर की गाथाओं में समाहित भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र एक सिद्धहस्त कवि के लिए ही संभव है। यहाँ हमें स्थविरों के आंतरिक जीवन के अनुभवों का प्रकृति-जनित-अनुभूतियों के साथ तादात्म्य भावोद्वेलित कथन मिलता है--'नभ में जब मेघरूपी दुंदुभी का नाद होता है, जल की धाराओं से पक्षि-दल निर्भय आनंद का अनुभव करता है। जब सरिता-तट के पादप-दल सुंदर वन-पुष्पों से पूर्ण होकर आकर्षक हो उठते हैं, तब ध्यान में लीन भिक्षु असीमित आनंद में निमग्न हो जाता है' (९।१।५२२-५३३)। इसी प्रकार एक विहारिय थेर के उद्‌गार गीत-सुगंध वायु से प्रफुल्लित में अविद्‌या का विनाश, पुष्पाकीर्ण वन एवं गिरीव्रज-गुहा में वियुक्त-सुखानुभूति-सनाथ ससुख विचरण करूँगा।[८] ये ही नहीं, अपितु अनेकशः ऐसी ही सुंदर भावनाओं से पूर्ण गाथाएँ सुंदर गीत-काव्य का आनंद वितरित करती हैं। निर्वाण-सुख की कल्पना से आनंदित तालपुट थेर के भावोद्‌गार कितने मार्मिक हैं--हृदय तुम मुझे इस नश्वर जगत् के प्रति आसक्त करने का प्रयास कर वही क्रिया करना चाहते हो जो फल की अभिलाषा रखने वाला जन वृक्षारोपण कर पुनः उसी का मूलोच्छेदन करके संपादित करता है (१९।१।११२४)। इसलिए 'हे रूपहीन, दूरगामी, एकचारी चित्त, मैं अब इसी क्षण से तुम्हारे आदर्शों का पालन नहीं करूँगा। काम अत्यंत ही भयावह, कष्ट कारक है, मैं अब विमुक्ति का पथ अपनाऊँगा'।[९] सत्य तो यह है कि स्थविरों का हृदय भौतिक विषमताओं से परे और आध्यात्मिकता की ओर पूर्णतः आकृष्ट हो चुका था, परिणामतः विमुक्ति-सुख-आह्लादितमानस से मधुर-स्वर-लहरी पर नृत्य करने गीत स्वतः मुखरित हो गए। रेवत स्थविर संसार की समस्त भोग-तृष्णाओं का

---

८. १०.३/५४४-५४५ गाथाएँ।

९. अरूप दूरंगम एक चारि,
न ते करिस्सं वचनं इदानिहं।
दुक्खा हि कामा कटुका महब्भया,
निब्बानमेत्राभिमनो चरिस्सं।।—(१९।१।११२५)।

परित्याग करके कितना आनंदित हैं, उसे जीवन-मरण का भेद भी अब नहीं रह गया, क्योंकि उसके हृदय ने निर्वाण-सुख के परमरस की कल्पना कर ली है--'मैं अब मरण का अभिलाषी हूँ, न जीवन के प्रति मेरे मन में किंचिदपि आसक्ति है, मैं तो सम्प्रति एक भृत्य के समान भय एवं त्रास (भौतिक सुख से परे हो जाने के कारण) से मुक्त हो चुका हूँ। जीवन-मरण अब मेरे लिए समान हो चुके हैं, क्योंकि मैं ज्ञान और तृप्ति से सनाथ हो गया हूँ। इसलिए आश्वस्त और विश्वस्त होकर अपने उस समय की प्रतिक्षा कर रहा हूँ, निर्वाण-पद की प्राप्ति से अपनी साधना का सर्वाधिक-मधुर फल के दर्शन करूँगा' (१४।१।६५४-५५)।

गीत कवि की अंत:प्रेरणा का वह प्रतिरूप होता है, जो भावातिशयता के परिणामस्वरूप सद्य: अनुभूत एवं सहजत: समुच्छ्वसित होकर प्रकट हो जाता है, विषयवस्तु अथवा आधार-जैसे तत्व तो मात्र उसमें गीतात्मकता और रागात्मकता के वाहक बनकर स्वयं समाविष्ट हो उठते हैं। अनुभूति के तीव्रातितीव्र आवेग के साथ मानसीवृत्ति का तादात्म्य प्रतिस्थापन की क्रिया कवि को ऐसे विस्तृत और निर्मय जगत का दर्शन कराती है, जहाँ वह करण-कारण की संकुचित सीमा का अतिक्रमण कर प्रतिफल का प्रतिबिंब उपस्थित करने के लिए उतावला हो उठता है और तभी विषय की प्रतिच्छाया एक-एक शब्द तथा पंक्ति में उभर पाता है। भावना की क्षणिकता, एकता एवं अन्विति से अनुप्राणित अनुभूति की अभिव्यंजना ही रचनाकार की सफलता है। श्री चन्द्रशेखर पांडेय ने लिखा है—'सुख और दु:ख की अनुभूति जब तीव्र से तीव्रतम हो जाती है, तब उसी आवेश में उदात्त और अनुदात्त ध्वनियों के सामंजस्य से कवि के कंठ से जो शब्द निकल पड़ते हैं, वे ही गीति की संज्ञा पा सकते हैं। उसमें कवि की एक ही भावानुभूति कोमल और मधुर शब्दों के संबल से गीति-प्रधान शैली में व्यक्त होती[१०] है। स्थविरों की ये आध्यात्मिक गाथाएँ कुछ इस प्रकार की हैं--अनेक विधि विषमताओं, आडंबरों,

१०. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृष्ठ ३३६।

द्वन्द्वों की चपेट में व्यग्र जीवन की निष्क्रियता से सहसा उद्वेलित भिक्षु का मान अनुभवातिरेक में रमकर सीमित आनंद के मोहक-आवरणाच्छादन से स्वयं को मुक्त कर शाश्वत सुख का अंवेषण करने लगा है। तेलकानि स्थविर की गाथाओं में कुछ ऐसे ही भाव ग्रथित हैं--मैं भ्रम और संशय से ग्रस्त हूँ, हिंसा रूपी दलदल से आक्रांत क्रोध का दास, अभिमान से दलित तथा दोषारोपण की क्रिया से विदीर्ण होता जा रहा हूँ। तृष्णा-धनुष मुझे लक्ष्य कर रहा है, मेरे अंतः में अहंकार रूपी अग्नि तीव्रतर होकर मुझे दग्ध कर रही है। मैं उस वैद्य को नहीं देख पा रहा हूँ, जो मुझे त्राण दे सके। कौन बिना शस्त्र के, बिना आघात किए, मेरे अंतः को विद्ध करने वाले तीर को देख सकता है, देह पर बिना कोई आघात पहुँचाए मेरे इस तीर को निकालने में समर्थ है (१६।३।७५२-७५६)। इस क्लेश से मुक्त होने के लिए अधिमुत्त थेर अपना भाव कितनी दृढ़ता से प्रकट कर रहा है--'जब यह संसार तृण और काष्ठ के सदृश दिखाई पड़ने लगता है, मनुष्य को अहंकार का अनुभव नहीं होता और यह मेरा नहीं है, इस भावना के वशीभूत वह संतप्त नहीं होता। ऐसी स्थिति में उसे परम शांति मिलती है, वह सोचता है, 'शरीर से मैं विरक्त हूँ, जगत का मेरे लिए कुछ अर्थ नहीं, यह शरीर तो अब विनष्ट ही होगा और कुछ तो हो नहीं सकता। इस देह से कोई भी किसी प्रकार का लाभ उठा सकता है, मुझे इसके लिए किंचिदपि द्वेष और प्रेम नहीं हो सकता।[११]

ये गाथाएँ वस्तुतः उत्कृष्ट आध्यात्मिक गीत हैं। अनुभूति की अतिशयता

---

११. तिणकट्ठसमं लोकं, यदा पंचाय पस्सति।
ममत्तं सो असंविंदं, नत्थि मे ति न सोचति।।
उक्कंठामि सरीरेन, भवेनम्हि अनत्थिको।
सोयं भिज्जिस्सति, कायो, अंजो च न भविस्सति।।
यं वो किंचन सरीरेन, तं करोथ यदिच्छथ।
न मे तप्पच्चया तत्थ, दोसो पेमं च हेहिति।।—(१६।१, ७१७-७१९)।

१२. १८।१, १०७१-१०७३।

से उद्वेलित हृदय जब आध्यात्मिक-मनोवृत्ति का पक्ष ग्रहण करता है तो सीमित-क्षणिक और भौतिक पदार्थों का अस्तित्व, सांसारिक विविध स्थितियाँ, मनुष्य के लिए अर्थ आश्रय ग्रहणकर जीवन की चरम परिणति का आलिंगन करती है। उसकी प्रज्ञाणहीन हो जाती है, उसकी मेधा उनसे उदासीन होकर अपनी स्मृति-प्रज्ञा का आत्मबोध तथा आत्मसाक्षात्कार के लिए उतावली हो उठती है। ऐसी स्थिति आने पर आस्था के समग्र सुमन मानव-जीवन के विकास-सोपानों पर विकीर्ण हो जाते हैं, निजी-स्वार्थ, समाज और वर्ग की दुर्गम-शृंखलाएँ सहज खंडित होने लगती हैं, हृदय में समभावनापन्न विश्व-मानव के प्रति विविध स्तवन-गीत प्रस्फुटित होने के लिए क्षणों की प्रतीक्षा में लीन हो उठते हैं। ऐसे ही हैं इन स्थविरों के आध्यात्मिक-गीत, जिनसे अहंभावापन्न अज्ञानाअंधकार की दुर्गम-परिधि को लाँघ, ज्ञान एवं चिर-शान्तिमयी सुधा-शीतल प्रभा-ज्योति में विचरण करने की प्रेरणा मिलती है।

इन स्थविरों ने अरहंत (Arahant) होने के कारण प्राकृतिक उपादानों को एक कवि की दृष्टि से देखा, परखा और उनसे प्रेरणा ग्रहण की है, उनमें शाश्वत स्फूर्ति के दर्शन एवं उनके क्रिया-कलापों से अपने अर्हत-जीवन को गतिशील बनाने का सुगम पथ निर्मित किया है। यही कारण है कि इन गाथाओं में हमें मूलतः करुण-भावों के दर्शन होते हैं और इसी से उत्प्रेरित निखिल विश्व के प्राणियों के लिए सहानुभूति, सद्भाव, सहृदयता, सदयता, स्नेह और इन सबसे ऊपर उठकर समभाव का प्रसाद बिखरा दिखाई पड़ता है। स्थविरों को प्रकृति की निर्मयता अत्यंत प्रिय है, वे उसी की भाँति अपने हृदय को संयत करना एवं प्राणिमात्र के लिए सुख-आह्लाद लुटाना चाहते हैं, यही कारण है कि प्रकृति की क्रोड उन्हें सर्वाधिक प्रिय है—'ऐसे पर्वत-खंड जिनका वर्ण उम्मा पुष्प के-से रंग का है, अथवा मेघाच्छन्न-आकाश के वर्ण का-सा है और विविध विहगों के दल से आकीर्ण रहता है, अत्यंत प्रिय है। वहाँ गृहस्थों का निवास नहीं होता, मृग-समूह एवं विभिन्न जाति वाले पक्षियों का कलरव होता

रहता है और जिस स्थान पर निर्मल जल है, विस्तृत शिलाखंड हैं, बंदर और मृग विचरण किया करते हैं, जहाँ के जलाशय शाद्वलराशि से आच्छादित रहते हैं, ऐसे पर्वत मेरे लिए सर्वाधिक प्रिय हैं'।[१२]

इतना ही नहीं यही भिक्षु पुनः कह रहा है 'श्यामवर्ण बादलों के कारण पर्वत-शिखर उत्तम प्रासाद-शिखर के सदृश, मत्तगजों के चिंघाड़-स्वर से जो रम्य है, ऐसे शैल मेरे लिए अतिशय रमणीय प्रतीत होते हैं'।[१३] कालुदायी स्थविर तो रक्तवर्ण के विकसित सुमनों से सनाथ वातावरण को देखकर प्रफुल्ल-हृदय सचेष्ट हो उठता है--नवीन कोपलों से सनाथ अंगारुण-विटपों ने फल-प्राप्ति की अभिलाषा से जीर्ण-शीर्ण पल्लवों का त्याग कर दिया। दीप्ति-ज्वाला-सदृश उदभासित होने लगे हैं। यह काल नव आशाओं से स्पंदित हो रहा है। वृक्ष-समूह सुमन-भार से वोहित हैं, दिशाएँ सौरभ से उच्छ्वासित हो गई हैं। फल की आकांक्षा से पत्र गिर रहे हैं। यही हमारी यात्रा के लिए मंगलमय-मुहूर्त हैं। प्रकृति की नित्य नव-नवीन शोभा से यह साधक कितना प्रभावित है, उससे इसके हृदय में नव-स्फूर्ति, निर्मय-चेतना प्रस्फुटित हो रही है, वृक्षों के पत्तों के ही समान वह भी भौतिक-भाव-विलासों से विमुख होकर परम निर्वाण रूपी फल की अभिलाषा से क्रियाशील होना चाहता है। संकिच्च स्थविर इसी प्रकार वर्षा-ऋतु के वातावरण से उत्प्रेरित होकर अपने हृदय को निष्काम-भावों से सनाथ कर रहा है।[१४]

---

१३. नीलब्भकूटसदिसा, कूटागारवरूपमा।
वारणामिरुदा रम्मा, ते सेला रमयंति मं।।—(वही १०६७)।

१४. अंगारिनी दानि दुमा भदंते,
फलेसिनो छदनं विघहाय।
ते अच्चिमंत्रो व पभासयंति,
समयो महावीर भागी रसानं।।
दुमानि फुल्लानि मनोरमानि,
समंततो सब्बदिसा पवंति।
पत्तं पहाय फलमाससाना
कालो इतो पक्कमनाय वीर।। –(१०।१।५२७-५२८)।

'थेरगाथा' की भाँति 'थेरी गाथा' भी काव्यगत सौन्दर्यों की भूमि है। यहाँ अतिशय संगीत-तत्व आत्माभिव्यक्ति-भाव एक-एक गाथा जीवनानुभूतियों से पूर्ण सत्योद्गारमय गीत-काव्य की सरस सृष्टि करती है। थेरीगाथाओं में समाहित मार्मिक उद्गारों से जो शांत-गंभीर एवं निर्मय-ध्वनि अंतः में अनुगूंजित होकर तादात्म्य स्थिति का निर्माण करती है, भारतीय साहित्य के अन्य गीत-काव्यों में दुर्लभ है। इन गाथाओं का प्रमुख-वैशिष्ट्य है भिक्षुणियों की आंतरिक ध्वनि, जिसने अनुभवातिशयता से जनित भावातिरेकमयी स्थिति में मधुर-स्वर-युक्त होकर प्रस्फुटित हो गई है। प्रत्येक भिक्षुणी ने प्रायः अपने पूर्व जीवन की चर्चा अवश्य की है, उसके पश्चात् निवार्ण-प्राप्ति हेतु कृत-साधनाओं और उसके साक्षात्कार का वर्णन मिलता है—एकनिष्ठ[१५] होकर मैंने देह, मन तथा अपनी वाणी को संयमित किया, उसके बाद तृष्णा को मूल-सहित उखाड़कर फेंक दिया। ऐसा आचरण कर लेने के बाद आज मैं शांत हूँ, मुझे निर्वाण-सुख प्राप्त हो रहा है। मैंने तो निर्वाण की परम शांति का साक्षात्कार कर लिया है। इसी प्रकार सुमना भिक्षुणी के उद्गार हैं-वृद्धा तू सुख की नींद शयन कर, अपने हाथों से निर्मित वस्त्र को धारण कर, इसी शरीर में परम शांति का अनुभव करो, कारण, अब तुम्हारे सभी राग उपशमित हो चुके। निर्वाण का निर्मय साक्षात्कार प्राप्त करने के परिणामस्वरूप तू सर्वथा शांत हो गई है।[१६]

भगवान बुद्ध की इस वाणी की आवृत्ति यह भिक्षुणी प्रायः किया करती। भिक्षुणियों के उद्गार किंचिदपि असंयत अथवा निराश-भावों से दूषित नहीं हो पाये हैं एवं उनके हृदय में स्त्री जाति-जनित निर्बलता, दैन्य और निराश्रित भावों ने पोषण नहीं पाया। ये भिक्षुणियाँ ने नैराश्य-भावों से स्वप्न में भी आक्रांत

---

१५. यथा अब्भानि वेरम्भो, वातो नुदाति पावुसे।
संजा में अभिकिरंति, विवेकपटिसंजुता।। —(११।१।५९८)।

१६. १।१५

नहीं प्रतीत होतीं, विषम तथा दुःखद क्षणों की अनुभूति उनके हृदय में है, परंतु उससे वे कातर कदापि नहीं हुईं, पीड़ित-मन उस पीड़ा में रमा नहीं, यही कारण है कि उन्होंने जीवन की विषमताओं, कुंठाओं का संतप्त राग नहीं अलापा; अपितु विजय-गान रूप में मधुर गीत गाया है—जब हृदय भलीभाँति समाधि में स्थिर हो गया है, ज्ञान नित्य ही वर्तमान है, अंतर्ज्ञान के प्रभाव से धर्म का सम्यक् रूपेण परिज्ञान प्राप्त कर लिया है, ऐसी स्थिति में स्त्रीत्व हमारे पथ में कदापि बाधक नहीं बन सकता। देखो, मैंने सर्वत्र ही अपनी सारी वासनाओं का विनाश कर लिया है, ऐसा अज्ञानाधंकार भी नष्ट हो चुका है, पापात्मा मार, प्राणियों के अंतक, अच्छी तरह तू समझ ले, इस प्रकार आज तेरा ही अंत कर दिया गया है, तुम्हारा वध हो चुका है।[१७] तपस्यारत सोमा को जब मार ने आकर चुनौती दी 'ऋषियों द्वारा भी अति दुर्लभ और अप्राप्य स्थान क्या दो अंगुलिमात्र प्रज्ञा से सनाथ स्त्री प्राप्त कर सकेगी? यह स्वप्न में भी संभव नहीं' (३।८।६०)। तब ये उदगार उस भिक्षुणी ने प्रकट किए। सत्य यही है कि थेरीगाथाओं में भिक्षुणियों के व्यक्तिगत जीवन और तज्जनित अनुभूतियों की यथार्थ किंतु मार्मिक अभिव्यक्ति है। प्रायः प्रत्येक भिक्षुणियों की गाथा का प्रारंभिक अंश जीवन-परिचय प्रस्तुत करता है। इस अंश की करुण भावनाएँ भारतीय साहित्य में अद्वितीय हैं। इन्हें पढ़कर हृदय सहज ही तादात्म्य-स्थिति में पहुँच जाता है, ये पालि-साहित्य में करुण-रस के सर्वोत्तम गीत हैं। भिक्षुणियों ने अपनी जीवन-कथा कहने में रंचमात्र भी कल्पना अथवा आडंबर का पक्ष नहीं ग्रहण किया है—'मैं पनिहारिन थी, जल भरना ही मेरा मात्र कार्य था। मेरे हृदय में अपनी स्वामिनियों का भय प्रतिक्षण समाया रहता, दण्ड-भय से मैं संत्रस्त रहती, उनके रोष एवं दुर्वचनों के कारण प्रपीड़ित होकर मैं भीषण शीत-काल में भी जल भरने का अपना कार्य संपादित करती थी' (१२।१।२३६)।

---

१७. सुखं त्वं बुढडिके सेहि, कत्वा चोडेन पारुता।
उपसुंतो हि ते रागो, सीतिभूतानि निव्वुता ति।। —(१।१६)।

अंत में यह भिक्षुणी-संघ में सम्मिलित हो गई और पूर्णप्रज्ञा-लाभ कर लेने पर 'पूर्णिका' बनी।

उद्कशुद्धिक ब्राह्मण ने उससे शीत-काल होने पर भी गहरी नदी के जल में स्नान क्रिया की आलोचना करती हुई कहा—'स्नान शुद्धि से पाप-पुंज से मुक्ति प्राप्त होती है, यह तुमको किसने बताया? यह तो अज्ञानतमावृत्ति-हृदय मूढ़ का एक मूढ़ के प्रति दिया गया मात्र उपदेश है। यदि जल-स्नान से ही शुद्धि संभव है, तो मंडूक, कच्छप, सर्प तथा कमर आदि सभी जलचर प्राणी निश्चितरूपेण स्वर्ग-प्राप्ति के अधिकारी हैं।' आगे वह कहती है—'हे ब्राह्मण! यदि ब्रह्मा के कारण भयातुर हो, तुम इस असह्य शीत से अपनी रक्षा करो।' (वही ४०-४१ तथा २४४)। उसके कथन से ब्राह्मण प्रभावित हो गया, वह वस्त्रादि का उसे दान देने लगा, पूर्णिका ने अस्वीकार कर दिया एवं उसे मुक्ति-पथ का संकेत कर कहा-'दुःखों का यदि तुम्हें भय है, यह दुःख यदि अप्रिय है तो बुद्ध धर्म, संघ की शरण ग्रहण करके सदाचरण में प्रवृत्त हो, मंगल होगा।[१८] इस प्रकार निर्वाण-सुख की प्राप्ति-विषयक भावनाओं से परिपूर्ण गीतों का गान प्रायः भिक्षुणियों ने अत्यंत ही तन्मयता के साथ किया है।इन गीतों में आत्मविश्वास, अपने कर्म की पूर्ण निर्मयता, जीवनी-शक्ति, सांसारिकता-रूपी दुर्दमनीय-दानव से संघर्ष के लिए अदम्य उत्साह और साहस आदि के उत्प्रेरक स्वर समाहित हैं, जिनका निनाद किसी भी विवेकशील जन के मानस पर प्रभावक बन सकता है। इसी के साथ भाव-प्रवण-कल्पना की छटा इन गीतों को सुंदरतम काव्य की कोटि में प्रतिष्ठित करने में समर्थ है।

---

१८. इत्थिभावो नो किं कयिरा, चित्तम्हि सुसमाहिते।
त्राणहि वत्तमानम्हि सम्मा धम्मं विपस्सतो।
सब्बत्थ विहता नंदी, नमोखंधो पदालितो।
एवं जानाहि पामि, निहतो त्वमसि अतंका ति।।
—(३।८।६१-६२)।

थेरीगाथाओं में जीवंत-स्वर-संचार करने वाली भिक्षुणियाँ प्रथम नारी हैं, उसके पश्चात् निर्वाण-सुख एवं मानव-मंगल-उद्गीथ की अमर गायिका। उनके मानस में नारी-सुलभ यौवनोन्माद्, वात्सल्य, स्नेह, कातर्य, मात्सर्य, दयार्द्रता, परदुःखानुभूति, सहिष्णुता, शीलता, हीनता आदि के अतिरिक्त सकलसृष्टि निर्मायित्री परम शक्ति-भावोन्मेष-विस्तारक गुणों के प्रकट दर्शन होते हैं। इन गीतों में नारी कहीं भी मात्र अबला के रूप में नहीं दिखाई पड़ती। यहाँ वह कहीं समाज और युग की परंपराओं को विछिन्न करने वाली क्रांतिउद्भाविका, संकल्प-विकल्पों की ज्वाला है, कहीं मानव-कल्याण भाव-भाविता, सहानुभूति उद्वेलिता, नवनीत-हृदय-मृदु-मृदुल प्रकृति-प्रतिरूपा-कृपा-करुणा-पयस्विनी और कहीं संसार की विविध-विधि-विषमातिविषम-स्थिति-परिस्थिति के संघर्षों में लीन साहस उत्साह-संयोजिता प्रचंड-भवानी एवं अंततोगत्वा वही निर्वाण-सुख कल्पना-भोवोद्वेलिता-निर्भय-गति-संचारिणी, अतिशय-सहज-स्वरूप-गर्विता-सी प्रतीत होती है। वैसे तो सभी काव्य गीत-काव्य की उत्कृष्ट विभूति हैं ही, परंतु अंबपाली, रोहिणी, चापा, सुंदरी, शुभा, ऋषिदासी और सुमेधा की गाथाएँ अद्वितीय गीत-काव्य हैं। इनके उद्गारों की भावातिशयता एवं संप्रेषणीयता के ही कारण कहीं आख्यान-गीत तो कहीं प्राचीन भारतीय आख्यान-काव्य की संज्ञा से इन्हें अभिहित किया गया है।

वस्तुस्थिति तो यह है कि थेर-थेरीगाथाओं में समाहित आत्मजयी उद्गार जीवन को चिरंतनगति देने वाले हैं, उनमें जीवन की विसंगतियों, कुंठा, त्रास एवं समाज की विषमताओं, विशृंखलताओं से संघर्ष करने के लिए अदम्य उत्साह तथा जीवन को चिर गतिमान और प्रभावान बनाकर उसे प्रतिष्ठित करने की संजीवनी सँजोई हुई है, जिससे हमें अनायास मानव-जीवन की समग्रता का बोध होता है। थेरी गाथा के वीसतिनिपातकी भिक्षुणियों के एक-एक उद्गार भावों की निर्मयता एवं गहनता के कारण श्रेष्ठतम काव्य की सृष्टि हैं। अंबपाली

की गाथाएँ गाथागीत अविकसित नाट्य-गीत अथवा ऐसे एकालाप गीत जहाँ भावों का सामंजस्यपूर्ण संयोजन हो, की कोटि में प्रतिष्ठित की जा सकती हैं। ये सभी गाथाएँ कलात्मक गीत हैं, जिनमें प्रौढ़ काव्य-सौंदर्य की अभिव्यंजना प्राप्त होती है।'[१९]

अंबपाली ने जिस निर्ममता और निरीहता के साथ भौतिक रसवाद के प्रति क्षोभ एवं घृणा व्यक्त की है, वह अन्यत्र कहाँ संभव है? अपने जर्जर शरीर का रूप देखकर उसका अनुताप कितना संगत है—विविध प्रसाधन-उपादानों-उपकरणों के माध्यम से सजे-सँवरे विन्यस्त मेरे अलकजाल एक समय सघन-उपवन के समान आकर्षक थे, परंतु संप्रति वही यत्र-तत्र छिन्न केशावलि होने से विरल हो गया। एक समय मेरी वाणी में वनोपवन-विहारिणी-कोकिला की मधु-मधुर कूजन-सदृश माधुर्य था, आज जरावस्था से दूषित होकर वही पदे-पदे स्खलित होने लगी है (१३।१।१५४ व २६१)। अंत में वह कहती है—'एक समय था जब यह शरीर शोभाधाम था, वही आज जर्जर तथा विविध दुःखों का आगार हो गया है। जरा से ग्रस्त यह शरीर निश्चितरूपेण शीघ्रातिशीघ्र आरक्षित होकर नष्ट हो जाएगा, ठीक उसी प्रकार जैसे जीर्ण-शीर्ण-खंडित-भवन ध्वस्त हो जाता है। सत्यवादी (बुद्ध) के वचन कदापि मिथ्या नहीं हो सकते'।[२०] 'अंबपाली' के उद्गार भले ही स्वकथन, स्वजीवन

---

१९. उपेहि सरणं बुद्धं,
धम्मं संघं च तादिनं।
समयादियाहि सीलानि,
तं ते अत्थाय हेहिति। —(१२।१।१४९)।

२०. The ballads of Chapa and Sundariare very old composition because they bear the stamp of the oldest Indian Akhyan as described by olden berg.(Plasms of the sisters : Introduction, Page XXI, XXII)
The approaches that of the symmetrical monologue. And her poem is a type lyric, not a personal document. xxx and concerning aging beauty in the abstract.
—Plasms of the sisters : Introduction, Page XXI

की अनुभूतियों से अनुप्राणित हैं, तथापि इनमें एक देशीयता के दर्शन अत्यल्प, किंतु जीवन की सार्वभौमसत्ता एवं उसके उस समग्रता का भाव-बोध अधिक कराता है, जो मानव-जीवन की चिरंतन-सत्यता की अनुभूति तथा भौतिकता की मिथ्या-रसमयता के शाश्वत प्रतीक-तथ्य का विशेष उद्‌घाटन प्रस्तुत करता है, यही है शिवमयता का स्वरूप जो कवि-सृष्टि का आधार है।

'अंबपाली' के ही सदृश शुभा भिक्षुणी के भावोद्‌गार मानवता की प्रतिष्ठा के लिए शिव वितरित करते-से प्रतीत होते हैं--भोग के सभी उपकरण प्राणांतक शत्रु के समान और प्रदीप्त पावक-पुंज के सदृश कष्टदायी होते हैं, ये उन प्राणियों के लिए प्रीतिकर और मोहक हो सकते हैं-जिनका हृदय अज्ञानतम से आवृत्त तथा भौतिक रसों से सिक्त है। मनुष्य की दुर्गति के मूल में यही भोग-तृष्णा की कामनाएँ हैं, इसी कारण मनुष्य स्वयं ही इनमें लिप्त होकर रोग का आमंत्रण करता है। इन भोग-तृष्णाओं के ही कारण चित्त संतापाश्रयी बनता है, क्लेश का अनुभव करता है और मनुष्य जन्म-मरण के बंधन का दास बन जाता है। भोग-तृष्णाओं के ही परिणामस्वरूप मनुष्य कभी उनमत्त हो उठता है, कभी प्रलाप करने लगता है, इन्हीं सबके कारण प्राणि-मात्र क्लेश पाता है (१३।५।३५३, ५५, ५७, ५८, ५९)। स्पष्ट है कि यह भिक्षुणी शुभा मात्र एकाकी चिर-सुख की अभिलाषिणी नहीं है, अपितु समग्र मानव-जाति के लिए चिर-सुख का मार्ग खोजना चाहती है-यही काव्य का परम लक्ष्य, जो इसकी गाथाओं की एक-एक पंक्ति में प्रतिमूर्त हो उठा है--जगत के भोगोपरकण ही अनंत दुष्परिणामों के आगार हैं, विविध दुखों के आकर एवं महाभयंकर विष की भूमि हैं, इन्हीं के कारण अशांति, कलह, शत्रुता उत्पन्न हुआ करते हैं, परिणामतः मानव-जीवन का उज्जवल पक्ष भी बाधित हो जाता है, ये मानवता का ह्रास कर उसका शोषण करते हैं। इसलिए अब मैं विषय-

वासनाओं से संघर्ष करती हुई परमशांति की अभिलाषिणी हो गई हूँ-- संयमित-एकाग्र हृदया मैं प्रमाद में रहित होकर जीवन के समस्त बंधनों का उच्छेद करने में तत्पर हूँ। यह मार्ग मैंने इस कारण स्वीकार किया कि इसमें न तो शोकानुभूति है, न अमंगल के आसार हैं, जो सर्वथा निर्भय है। मैं उसी मार्ग के अनुसरण करने का प्रयास कर रही हूँ, जो सरल, मंगलमय आर्य अष्टांगिकमार्ग महर्षियों के लिए अभिप्रेत था, प्रीतिकर था, एवं जिसके अनुसरण द्वारा ये ऋषिगण संसार से निर्लिप्त हो गए।[२१]

शुभा २. के उद्गारों में तो एक विचित्र प्रकार का आत्मविश्वास है, वह कालजयी हो चुकी है। उसका आत्मबल ललकार उठा है—वह आम्रवनी में मार्गविरोध करने वाले जीवक से कहती है—'तू कलुषमय है, मैं निर्मय-अकलुषित हृदय हूँ, तुम्हारे हृदय में रागानुभाव-भाव है, मैं रागों से रहित हो चुकी हूँ, तुम मलिन मानस वाले हो, और मेरे हृदय में मालिन्य के लिए किंचिदपि स्थान अवशेष नहीं—मेरा हृदय सर्वतोभावेन विमुक्त है। ऐसी स्थिति में तुम मार्गावरोधक क्यों बन रहे हो।[२२] जीवक उसे अनुकूल करने के लिए

---

२१. एदिसो अहु अयं समुस्सयो,
जज्जरो बहुदुक्खनमालयो।
सोपलेपपतितो जराघरो,
सच्चवादिवचनं अनंजथा।।—(१३।१।२७०)।

२२. अनंतदीनवा कामा, बहुदुक्खा महाविसा।
अप्पस्सादा रणकरा, सुक्कपक्खविसोसा।।
रणं करित्वा कामानं, सीति भावाभिकङ्खिनी।
अप्पमत्ता विहस्सामि, सव्बयोजनाक्खये।
अशोकं विरजं खेमं, अरियठट्ङ्गिकं उजुं।
तं मगं अनुगच्छामि, येन तिण्णामहेसिनो।।
—(१३।५।३६०-६१ व ६३)।

बहु–विधि प्रयास करता है, किंतु व्यर्थ। शुभा के विमुक्त–हृदय की वाणी सुनिए—'मूढ़! तू सुमेरु को ही लाँघने का उपक्रम कर रहा है। देख, इस समय मेरे हृदय को रागाभिभूत करने के लिए इहलोक तथा परलोक, कहीं भी कोई वस्तु नहीं है। मेरे हृदय में राग का अभिज्ञान तक नहीं है, मैंने उसका मूलोच्छेद कर डाला है। मेरा राग किसी अज्ञात स्थान में उसी प्रकार अदृश्य हो चुका है, जैसे हाथ से फेंके हुए अंगारे अथवा पात्र में उड़ेला हुआ विष दृष्टिगत नहीं होता।' (१४।१।३८६–८८)। भिक्षुणी शुभा पूर्णतया निरीह–भाव से निर्वाण–गीत गाती है, भौतिक शरीर के प्रति उसके मानस में रंचमात्र भी मोह नहीं है–

'यह शरीर हरताल से रंगे भित्तिचित्र के समान है, इसे वास्तविक मान लेना निरी मूर्खता है' (१४।१।३९५)। वह भौतिक रसवादी जीवक से कहती है—सुंदर काष्ठ–खंड द्वारा निर्मित और चित्रित कठपुतली तांत और खूँटी के सहारे विविध भाव–भंगिमाओं के साथ आकर्षक नृत्य दिखाती रही, परंतु खूँटी और तात से विहीन वही कठपुतली छिन्न–भिन्न हो गई, उसके खंड–खंड धरती पर पड़े थे। कठपुतली के इन भग्न अवशेषों में से कौन–सा हृदय को आकर्षित करने वाला है? ठीक ऐसी ही स्थिति मानव–देह की भी है। शरीर के विभिन्न अवयव भी छिन्न–भिन्न हो जाएँगे। फिर छिन्नावस्था में पड़े शरीर को कोई भी अवयव आसक्ति का कारण नहीं बन सकता है।[२३] इन गाथाओं में न केवल

---

२१. एदिसो अहु अयं समुस्सयो,
जज्जरो बहुदुक्खनमालयो।
सोपलेपपतितो जराघरो,
सच्चवादिवचनं अनंजथा।।—(१३।१।२७०)।

२२. अनंतदीनवा कामा, बहुदुक्खा महाविसा।
अप्पस्सादा रणकरा, सुक्कपक्खविसोसा।।
रणं करित्वा कामानं, सीति भावाभिकङ्खिनी।
अप्पमत्ता विहस्सामि, सब्बयोजनाक्खये।
अशोकं विरजं खेमं, अरियठट्ङ्गिकं उजुं।
तं मगं अनुगच्छामि, येन तिण्णामहेसिनो।।—(१३।५।३६०–६१ व ६३)।

निर्वाण–भावों की अभिव्यक्ति, अपितु इनमें काव्य गुणों, रस, अलंकारों की कमनीय छटा सहज इन्हें किसी सरस–हृदय–कवि की श्रेष्ठतम कृति के रूप में प्रतिष्ठित कर देती है। करुण–रस की अभिव्यंजना यहाँ देखने को मिलती है, वह समग्र पालि–साहित्य में अन्यत्र निश्चित रूपेण दुर्लभ है। भिक्षुणियों ने भी भिक्षुओं के ही सदृश प्राकृतिक उपादानों को अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए माध्यम–रूप में प्रेरणा–स्रोत स्वीकारा है। गीत में प्रकृति की विविध वस्तुएँ जीवनी–शक्ति का संचार करती हैं, इस परिप्रेक्ष्य में आँका जाए तो अंबपाली की गाथाएँ समस्त काव्य–साहित्य के लिए गौरव की वस्तु हैं। प्रारंभ से अंत तक अंबपाली प्रकृति को स्वयं में समेटे हुए चलती हैं—पुष्प उनपर विचरने वाले भ्रमर, वन, उपवन, शशक, कदली–तरु, वनचारिणी–कोकिला शंख आदि से उसने अपने यौवनभरित शरीर के विभिन्न अंगों को उपमित किया है।

•

अम्बपाली

AMBPĀLĪ

•

"काळका भमरवण्णसादिसा, वेल्लितग्गा मम मुद्धजा अहुं।
ते जराय साणवाकसादिसा, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

युवावस्था का सुघर काल–
केशाग्र भाग जब मेरे
भ्रमर–सदृश थे काले
मोहक थे घुंघराले।
प्रभाव जरावस्था का
कि आज वही केश,
हो गये शण जैसे श्वेत।
कालगत यह कैसा परिवर्तन,
मिथ्या कहां? सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"वासितोव सुरभी करण्डको, पुप्फपूर मम उत्तमङ्गजो।
तं जरायथ सलोमगन्धिकं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

चम्पक मल्लिकादि सुमनदाम–
से संग्रथित रहते थे,
मम केशललाम।
पुष्पवास–वासित–प्रसाधन से
लेपित सुभग देहलोम,
सुरभि–मञ्जूषा–निस्सरित–
जैसे, सौरभ अपार,
प्रभाव जरावस्था का

कि आज वह उत्तमांगज
कर रहे शशक–रोम–गन्ध का प्रसार
कालगत यह दुःखद परिवर्तन,
मिथ्या नहीं, सम्मासम्बुद्ध के वचन।

''काननंव सहितं सुरोपितं, कोच्छसूचिविचितग्गसोभितं।
तं जराय विरलं तहिं तहिं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

केश का विन्यास मेरे
रहता सज्जित सुघर,
जो पूर्व में,
केश प्रसाधनिका से
होकर प्रसाधित,
उपवन सघन हो जैसे
रोपा गया सुन्दर,
जहां बिलस रहे
ऋजु–लम्ब–शाख उत्थित।
जराक्रान्त वही आज
हो गये पतित निबल–
यत्र–तत्र, हैं विरल।
कालक्रमित कैसा यह परिवर्तन,
सम्मासम्बुद्ध के मिथ्या नहीं वचन।

''कण्हखन्धकसुवण्णमण्डितं, सोभते सुवेणीहिलङ्कतं।
तं जराय खलितं सिरं कतं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

कनक–हीरक–खाचित भूषित,
चित्रकार–चातुर्य पोषित,
नीलवर्ण–धातु–सुष्ठु–लेख–सम
सम्बिभूषित मम थी
भ्रूभंगिमा जो अति सुघर,
जरा का आगमन हुए
वली (झुर्रियों के) चिह्न उस पर।
कालक्रम का विचित्र अनुवर्तन
मिथ्या नहीं,
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"चित्तकारसुकताव लेखिका, सोभरे सु भमुका कुरे मम।
ता[१] जराय वलिभिप्पलम्बिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

स्वर्णसूत्र साधित जो रहता था–
कृष्ण केश बन्ध,
वेणी थी मेरी कर रही विकेरित–
नित सुरभि–गन्ध
जरा दुष्प्रभाव, आज मेरा शीश
हो गया विलून केश
काल संक्रमण, का यह परिवर्तन
असत्य नहीं होता
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"भस्सरा सुरुचिरा यथा मणी, नेत्तहेसुमभिनीलमायता।
ते जरायभिहता न सोभरे, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

आयत नयन थे सुभग मेरे
मध्य उनके पुत्तलिका युगल
शोभायमान,
नीलमणि–सदृश सतत
हुआ करतीं जो दीप्तिमान्
जराक्रान्त आज वह
हो गयीं ज्योतिहीन,
कुरूप–दीन।
कालचक्र, यह कैसा परिवर्तन,
कथमपि नहीं मिथ्या,
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"सण्हतुङ्गसदिसी च नासिका, सोभते सु अभियोब्बनं पति।
सा जराय उपकूलिता विय, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

कोमल थी, नासिका मेरी
सुदीर्घ, कमनीय,
हरिताल–कोर रूप मानो
उत्थायमान–
नवयौवन के शिखर रमणीय,
विमर्दित अब जरा से
उसका रम्य लेख,

रह गयी समरेख।
कालचक्र, विषम परिवर्तन,
मिथ्या नहीं होते–
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

“कङ्कणंव सुकतं सुनिट्ठितं, सोभरे सु मम कण्णपाळियो।
ता जराय वलिभिप्पलम्बिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

शिल्प, शिल्पकार की प्रतीति–
उपजाते–से
कंकण–समान थे मेरे
कर्ण–कोर, शिखर उत्थित,
शिथिलित जरा–प्रभाव
निम्नमुख आज लम्बित,
कालचक्र, यह दुसह परिवर्तन,
मिथ्या नहीं,
कथमपि,
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

“पत्तलीमकुलवण्णसादिसा, सोभरे सु दन्ता पुरे मम।
ते जराय खण्डिता चासिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

कदली–मुकुल–सम धवल
पूर्व में
मेरी जो थी दन्त–पंक्ति विमल,

जरा का प्रबल प्रसार,
बिकृत आकार–प्रकार,
खण्ड–खण्ड है विवर्ण
हो गयी पाण्डुवर्ण,
काल का, कैसा परिवर्तन,
मिथ्या नहीं,
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"काननम्हि वनसण्डचारिनी, कोकिलाव मधुरं निकूजिहं।
तं जराय खलितं तहिं तहिं, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

वन–देश–सुख–विहारिनि–
मधु–भाषिनि–
कोकिल की कूक सुघर–
सदृश मेरी भी
वाणी मधुर–
हुआ करती थी मुखर।
जरावय–प्रभाववश
आज वही स्खलित,
खण्डदन्त पंक्ति ने,
है कर दिया विश्रृंखलित।
कालायातित यह परिवर्तन,
मिथ्या नहीं,
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"सण्हकम्बुरिव सुप्पमज्जिता, सोभते सु गीवा पुरे मम।
सा जराय भग्गा विनामिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

परिष्कृती-कृत स्निग्ध-सुन्दर
शंख-सम ग्रीवा सुघर,
पूर्व वय में मेरी-
जो,
आज वह जरायुदेशित
हो गयी विवर्ण-विनमित।
काल-समेधित यह परिवर्तन,
मिथ्या नहीं,
कदापि हैं सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"वट्टपलिघसदिसोपमा उभो, सोभरे सु बाहा पुरे मम।
ता जराय यथा पाटलिब्बलिता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

पूर्व वय में जो थे मेरे
बाहुद्वय सुन्दर सुगोल
अर्गला-सम सुदृढ़ सुडौल।
आज वह, जरायु-पालित
जर्जर शिथिल,
पाटलि-शाख-गलित
जैसे निर्बल,
हो गयीं वलित (त्वग्-संकुचन)

कालकृत कैसा परिवर्तन
मिथ्या नहीं,
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"सण्हमुद्दिकसुवण्णमण्डिता, सोभरे सु हत्था पुरे मम।
ते जराय यथा मूलमूलिका, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

अंगुलियां थीं रहती अलंकृत
हाथ की–मेरे,
स्वर्णालंकारों से घनेरे।
एवं उन्हें
मुद्रिकाएं बनाती रहीं शोभन,
मधुर वह मेरा मदिर–यौवन।
अवनत युवा–काल–ग्रस्त
आज हैं अंगुलियों में ग्रन्थि–
पारुष्य–हृत मसृण–कान्ति।
कालचक्र, नियति परिवर्तन,
मिथ्या नहीं–
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"पीनवट्टसहितुग्गता उभो, सोभरे सु थनका पुरे मम।
थेविकीव[१] लम्बन्ति नोदका, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

वक्षस्थल पर–
वक्षोज, उन्नमित, पीन वर्तुलाकार

यौवन–श्रृंगार,
किया करते थे शोभा–धार।
जराक्रान्त देह वय क्षीयमान्
आज वही हो गये, रीते–
जल प्रसेवक–से
प्रलम्बमान्।
जरा का प्रभाव, अद्भुत परिवर्तन
मिथ्या नहीं,
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"कञ्चनस्स फलकंव सम्मट्ठं, सोभते सु कायो पुरे मम।
सो वलीहि सुखुमाहि ओततो, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

विशुद्ध स्वर्ण–फलक–सम
प्रभामय, जो पहले
प्रदीप्त था सुवर्ण मेरा तन,
संकुचित त्वक्
सूक्ष्म वलिमत्
जरागमन।
काल की गति, कैसा परिवर्तन
मिथ्या नहीं सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"नागभोगसदिसोपमा उभो, सोभरे सु ऊरू पुरे मम।
ते जराय यथा वेळुनाळियो, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

मेरा वह ऊरु–प्रदेश
गज–शुण्ड–सदृश शोभन था

जब यौवन था,
वार्धक्यहत, वह तत्वक्षीण
बांस की हो नाल जैसे
हो गया श्रीविहीन।
कालचक्र, कैसा परिवर्तन
मिथ्या नहीं,
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

'सण्हनूपुरसुवण्णमण्डिता, सोभरे सु जङ्घा पुरे मम।
ते जराय तिलदण्डकारिव, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

स्वर्णालंकार-अलंकृत
सम्यकसज्जित
नूपुर-रव-झंकृत-
मेरी थी जंघाएं जब यौवन-विहान,
वार्धक्य-निहत वह आज
हो गयीं-
नीरस तिल के डण्ठल-समान।
कालचक्र, का यह परिवर्तन
मिथ्या नहीं,
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

''तूलपुण्णसदिसोपमा उभो, सोभरे सु पादा पुरे मम।
ते जराय फुटिता वलीमता, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा।।

मेरे थे पद-युगल,
स्नेहसिक्त तूलखण्ड-
स्निग्ध कोमल,
यह वार्धक्य, बल अनन्त,
उससे हो शोषित
अब अहह! वालिमन्त।
कालक्रमागत यह परिवर्तन
मिथ्या नहीं,
कथमपि सम्मासम्बुद्ध के वचन।

"एदिसो अहु अयं समुस्सयो, जज्जरो बहुदुखानमालयो।
सोपलेपपतितो जराघरो, सच्चवादिवचनं अनञ्ञथा"ति।।

सुख-धाम यह, आश्रय-काम
जर्जित जरा से अबललाम।
इस प्रकार,
बहुशः यहां दुःख-सम्भार।
जीर्ण, यथा जर्जर भवन,
जीर्णोद्धार की अपेक्षा,
जरा का गेह, यह शिथिल देह
संस्कार क्रियाभिमुख-
अपेक्षित संरक्षा।

जीर्णोद्धार–रहित सदन–
होता धराशायी विशाल,
वार्धक्याहत यह शरीर
अवशिष्ट अन्ततः कंकाल।
मिथ्या यह है देहानुवर्तन,
अवितथ किन्तु–
सम्मासम्बुद्ध के वचन।

रोहिणी

ROHINĪ

•

"समणाति भोति सुपि, समणाति पबुज्झसि।
समणानेव कित्तेसि, समणी नून भविस्ससि।।

'श्रमण का स्मरण बाले!
तेरा शयन, निद्रा का त्याग,
बस, 'श्रमण' का चिन्तन-मनन,
करती हो सदा श्रमण जन का-
गुण-कथन, नित यह प्रशंसा!
क्या चाहती हो-
श्रमण पथ का करना-
अनुगमन!

"विपुलं अन्नञ्च पानञ्च, समणानं पवेच्छसि।
रोहिनी दानि पुच्छामि, केन ते समणा पिया।।

आते हैं ये श्रमण (सन्यासी) जब
जुटातीं तुम देने-हेतु उनको-
भोजन-पान के प्रचुर उपकरण,
पूछता मैं तुमसे हूं रोहिणी!
क्यों, इतने हैं प्रिय तुम्हें
ये श्रमण?

"अकम्मकामा अलसा, परदत्तूपजीविनो।
आसंसुका सादुकामा, केन ते समणा पिया।।

कर्म से विरति–वृत्ति, अलस–प्रवृत्ति
भिक्षाटन में रत, सतत,
जीवन–यापन का आधार–
जो प्राप्त करते भिक्षा–रूप उपहार,
जिह्वा–स्वाद–हित, लोलुप,
करते रहते जो विचरण,
पूंछता मैं तुमसे, इतने हैं प्रिय,
तुम्हें क्यों ये श्रमण?

"चिरस्सं वत मं तात, समणानं परिपुच्छसि।
तेसं ते कित्तयिस्सामि, पञ्ञासीलपरक्कमं।।

चिरकाल से पूछते थे–
परिचय प्रभावक श्रमणजन का,
हे तात!
करती हूं मैं व्याख्यान,
जो उनके प्रज्ञा, शील कर्मानुष्ठान का–
है दिव्य आख्यान।

"कम्मकामा अनलसा, कम्मसेट्ठस्स कारका।
रागं दोसं पजहन्ति, तेन मे समणा पिया।।
पूर्णतः वे कर्मनिष्ठ,
कथमपि नहीं निष्क्रिय,
हैं श्रेष्ठ कर्म–साधक।
कर्म, जिससे हो जाता है
हृदय से राग–द्वेष का निष्क्रमण,

इसीलिए,
प्रिय हैं मुझको ये श्रमण।

"तीणि पापस्स मूलानि, धुनन्ति सुचिकारिनो।
सब्बं पापं पहीनेसं, तेन मे समणा पिया।।

लोभ-द्वेष-मोह का त्रिवर्ग यह
मूल है पाप का,
अनवद्य, श्रेष्ठ कर्मानुष्ठान,
इनका,
करता है समस्त पापों का
अन्तर्मन से यह हरण,
इसीलिए,
प्रिय हैं मुझको ये श्रमण।

"कायकम्मं सुचि नेसं, वचीकम्मञ्च तादिसं।
मनोकम्मं सुचि नेसं, तेन मे समणा पिया।।
क्रिया से, वचन से, और मन से
शुद्ध इनके कार्यकलाप,
जिससे हैं करते संचरण,
इसीलिए,
मुझको प्रिय हैं ये श्रमण।

"विमला सङ्खमुत्ताव, सुद्धा सन्तरबाहिरा।
पुण्णा सुक्कान धम्मानं, तेन मे समणा पिया।।

रागादि भाव-विरहित,
शंख और मुक्ता-सदृश-

निष्कलंक–धवल–शुद्ध–
अन्तर्बाह्यत:
चरित्र जिनका,
एकान्तसुख, अनवद्य धर्म का
निरन्तर है आवरण,
इसीलिए,
प्रिय हैं मुझको ये श्रमण।

"बहुस्सुता धम्मधरा, अरिया धम्मजीविनो।
अत्थं धम्मञ्च देसेन्ति, तेन मे समणा पिया।।

धर्मादि–नियम में निपुण,
आदर्श–पथ–सेवी–
जो हैं बहुज्ञ,
आचार समाचार शिक्षापद रूप–
आर्यधर्म (अरियाधम्म) ही
है जीवन, और हैं प्रज्ञ,
धर्मानुदेशक जो प्रतिपादक हैं
करते सिक्खापद–शिक्षण,
इसीलिए,
मुझको हैं प्रिय ये श्रमण।

"बहुस्सुता धम्मधरा, अरिया धम्मजीविनो।
एकग्गचित्ता सतिमन्तो, तेन मे समणा पिया।।

विज्ञ, प्रज्ञ, नियम–चतुर
धार्मिक विश्वास–संग,

रह सतत अनुचर,
करते व्यतीत जीवन
अभिप्राय, है जीने का,
जिनका
चित्त का स्थिरीकरण
इसीलिए, प्रिय हैं–
मुझको, स्थिरात्मा ये श्रमण।

"दूरङ्गमा सतिमन्तो, मन्तभाणी अनुद्धता।
दुक्खस्सन्तं पजानन्ति, तेन मे समणा पिया।।

एकाग्रचित्त एवं स्थिरात्मा,
सहिष्णु–प्रकृति वह,
वाणी, विवेकपूर्ण, प्रकटाती है ज्ञान,
ज्ञात उन्हें सम्यक् दुःखादि का,
किस प्रकार होता है अवसान,
सिद्धिभावाभिभूत, मान–
सम्मान–मोहापगत वह, यथेच्छ
दूर देश, कानन में करते
है विचरण,
इसीलिए,
मुझको प्रिय हैं ये श्रमण।

"यस्मा गामा पक्कमन्ति, न विलोकेन्ति किञ्चनं।
अनपेक्खाव गच्छन्ति, तेन मे समणा पिया।।

निरपेक्षभाव–प्रकृतिबद्ध वह
विचरते जिस ग्राम–पथ निकट

से निरभिलाष,
पुनः न करते उस ओर दृष्टि-पात,
अनुत्सुक, अनवधान-वृत्ति-
सम्प्रेरित हैं करते परिभ्रमण
इसीलिए,
मुझको प्रिय हैं ये श्रमण।

"न ते सं कोट्ठे ओपेन्ति, न कुम्भि न खळोपियं।
परिनिट्ठितमेसाना, तेन मे समणा पिया।।

अपरिग्रह-वृत्ति में प्रवृत्त-
करते न अर्थ-सञ्चय,
हों जिससे इन्दियां, संतृप्त।
आवश्यकता नहीं उनको,
करें निर्मित संचय-सदन,
रखें कण्डीलक, मृत्तिका का
घट भी न।
प्राणिजन-सुखार्थ करते सतत
सिद्धिमार्ग का अन्वेषण,
इसीलिए,
मुझको हैं प्रिय ये श्रमण।

"न ते हिरञ्ञं गणहन्ति, न सुवण्णं न रूपियं।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति, तेन मे समणा पिया।।

अपरिग्रही वे करते न मुष्टिबंन्ध-
कथमपि न कदापि हिरण्य,
ग्रहण नहीं करते निजकरों से

रजत और न तो सुवर्ण।
आवश्यकताएं हैं उनकी
त्याग, समर्पण के भाव,
विगत की न सोच, न,
भविष्य के प्रति मन में
उनके लगाव।
सन्तुष्ट रहा करते वे
वर्तमान का ही कर वरण,
इसीलिए,
मुझको हैं प्रिय ये श्रमण।

"नानाकुला पब्बजिता, नानाजनपदेहि च।
अञ्ञमञ्ञं पिहयन्ति, तेन मे समणा पिया।।

विविध कुल-ज्ञाति तथा-
जनपद-प्रान्तरों से अनेक,
आगत हो गये जो प्रव्रजित,
पारस्परिक प्रेम-भावों से-
हो गये हैं अभिभूत जो
करते भेद-पटाच्छन्न
अन्तर्मानस को निरावरण,
इसीलिए,
मुझको प्रिय हैं ये श्रमण।

"अत्थाय वत नो भोति, कुले जातासि रोहिनी।
सद्धा बुद्धे च धम्मे च, सङ्घे च तिब्बगारवा।।

कुल की श्रीसम्पन्नता, समृद्धिका
हेतु बन हे रोहिनी!

जनमी हो पुत्रिंके!
बुद्ध, बुद्ध धर्म और बुद्धसंघ में
विश्वास, तुम्हारी श्रद्धा–
अतिशय है प्रबल तेरी धर्म निष्ठा
आत्मगौरव की हे सूत्रि के।

"तुवञ्हेतं पजानासि, पुञ्ञक्खेत्तं अनुत्तरं।
अम्हम्पि एते समणा, पटिग्गण्हन्ति दक्खिणं।।

हो गया तुमको अवगत यह–
केवल है क्षेत्र (बुद्ध धर्म)
श्रेष्ठ तथा यही अनुत्तर,
जिसमें हो अवस्थित
सम्भाव्य है उत्कर्ष प्रखर।
हम भी आज से कर देंगे
स्वयं को–

"पतिट्ठितो हेत्थ यञ्ञो, विपुलो नो भविस्सति।
सचे भायसि दुक्खस्स, सचे ते दुक्खमप्पियं।।

पुण्य पुरुषों (श्रमणों) की सेवा–
शूश्रुषा–हित समर्पित,
इसी से होगी निश्चयतः
दानधर्म हमारा
संवर्द्धित।
दुःखादि भय–संतृप्त यदि–
चाहती नहीं तुम होना,
बुद्ध, बुद्ध धर्म (सिद्धान्त)–

और अनुशासन में–
प्रवेश कर लो शरण–
जानकर उनको और उनकी अनुदेशना।
उसकी ही केवल अब प्रतिपन्नता,
पा सकोगी उससे तुम श्री सम्पन्नता।

"उपेहि सरणं बुद्धं, धम्मं सङ्घञ्च तादिनं।
समादियाहि सीलानि, तं ते अत्थाय हेहिति।।

दुःखादि भय-संतप्तयदि
चाहती नहीं तुम होना,
बुद्ध, बुद्धधर्म (सिद्धान्त)
और अनुशासन में
प्रवेश कर लो शरण–
जानकर उनको और उनकी अनुदेशना।
उसकी ही केवल अब प्रतिपन्नता,
पा सकोगी उससे तुम श्री सम्पन्नता।

"उपेमि सरणं बुद्धं, धम्मं सङ्घञ्च तादिनं।
समादियामि सीलानि, तं मे अत्थाय हेहिति।।

बुद्ध, बुद्ध धर्म (सिद्धान्त) और
बुद्ध–उपदेशों की जाता मैं हूं शरण,
करूंगा अवगत मैं,
कर आरोपित निज पर
कर लूंगा उनका वरण।
करूंगा अनुपालन मैं

उनके शील और अनुदेश,
इस रीति से ही कर सकूंगा
प्राप्त मैं
निश्चय ही समृद्धि-देश।

"ब्रह्मबन्धु पुरे आसिं, सो इदानिम्हि ब्राह्मणो।
तेविज्जो सोत्तियो चम्हि, वेदगू चम्हि न्हातको"ति।।

एक समय जन्मा मैं ब्राह्मण-सुत रूपथा,
स्थिर हूं ब्राह्मण रूप ही मैं आज भी निश्चय,
त्रिविध प्रज्ञान श्रेष्ठ,
कर चुका अब आत्मलय।
कर लिया है वेद-विद्या का ज्ञान,
सत्यतः,
हो गया प्राप्त मुझे संस्कारित
वह पूर्व (ब्राह्मण धर्म का) स्थान,
क्योंकि हो चुकी
आत्मिक परिशुद्धि मेरी
करके आध्यात्मिक स्नान।

चापा

CĀPĀ

•

"लट्ठिहत्थो पुरे आसि, सो दानि मिगलुद्दको।
आसाय पलिपा घोरा, नासक्खि पारमेतवे।।

वह समय जब स्वछन्द था
गृहत्यागी, परिव्राजक बना,
विचरण करता दण्ड–हस्त,
सम्प्रति किन्तु व्याध एक, मैं
हो गया हूँ–
तृष्णा–काम रूप घोर पंक ग्रस्त–
यद्‌यपि असम्भव–
उद्यत त्याग–हेतु तथापि सब,
प्राक् स्थिति ओर अभिमुख–
हो सकूं अभिलाष अब।

"सुमत्तं मं मञ्ञमाना, चापि पुत्तमतोसयि।
चापाय बन्धनं छेत्वा, पब्बजिस्सं पुनोपहं।।

काम–क्रोधादि के वशीभूत
प्रमादी मान मुझको,
पुत्र करता रुदन मेरा, यदि कभी,
भार्या वह मेरी तब,
शान्त, मत कर रुदन–
'हे उपक पुत्र, मांसाहारक–आजीवक–

के प्रिय सुत हे'–
गीत गा प्रसन्न करती–
थी उसको।
बहुशः वह करती मेरी पूर्वस्थिति–
का उपहास,
सौन्दर्य की कल्पना तक
उसके, करती मन पर घात,
बन्धन अतिगाढ़, वह
चापा का वशीकरण,
कर भग्न, निश्चय करूंगा
मैं पुनः विचरण।

"मा मे कुज्झि महावीर, मा मे कुज्झि महामुनि।
न हि कोधपरेतस्स, सुद्धि अत्थि कुतो तपो।।

हो नहीं रोषाभिभूत, केलिकरण मत्त–सम–
महामुनि प्रिय हे देवदूत मम,
सामान्य–सीलघु बात यदि
यह,
तुम्हारे क्रोध का कारण,
असहिष्णु हे!
शुद्ध–पावन जीवन–निमित्त,
कर सकोगे किस प्रकार
तपाचरण।

"पक्कमिस्सञ्च नाळातो, कोध नाळाय वच्छति।
बन्धन्ती इत्थिरूपेन, समणे धम्मजीविनो।।

त्याग ग्राम 'नाल' मैं अब
हो रहा हूं प्रस्थित,
कौन वासोत्सुक यहां जो
साधु-जीवन यापनार्थ-
कृत संकल्प,
होकर प्रव्रजित।
जहां नारि-रूप का आकर्षण,
समुपस्थित रहता, प्रतिक्षण।

"एहि काळ निवत्तस्सु, भुञ्ज कामे यथा पुरे।
अहञ्च ते वसीकता, ये च मे सन्ति ञातका।।

प्रिय उपक! मनोहर श्याम नयन-
रागानुराग यह चापा का
केवल तेरा,
रह उसका बन,
कर प्रत्यावर्तन।
मत करो गमन, कर पूर्णाभोग
इच्छानुकूल, जैसे पहले,
सब स्वजनदास, मैं दासी-
बन, तब वश वर्तिनि,
कर प्राप्त सुभग संयोग।

"एत्तो चापे चतुब्भागं, यथा भाससि त्वञ्च मे।
तयि रत्तस्स पोसस्स, उळारं वत तं सिया।।

करती रहीं सतत मधुभाषण
चापे! तुम यादृश–
तब, अब मधुर वचन,
जो मेरे प्रति–
बस, चतुर्थांश प्रिय समाचरण।
तब प्रणय–वचन स्वीकार
राग–अभिभूत पुरुष
गौरवशालिन् हो धन्य, अन्य,
हो मोह गया सब भग्न,
मेरा जो काम–राग–
आसक्ति–जन्य।

"काळङ्गिनिंव तक्कारिं, पुप्फितं गिरिमुद्धनि।
फुल्लं दालिमलट्ठिंव, अन्तोदीपेव पाटलिं।।

क्या रूप मेरा दर्शनीय,
नहीं है शोभन?
हे मेरे प्रिय श्याम–नयन,
वन–प्रान्तर मध्य लहरती–
जैसे महालता (मम देहयष्टि),
दाड़िम–तरु अद्रि–शिखर–
उद्गत हो फुल्ल यथा–
(मम नव यौवन)।
अथवा जैसे कन्दरा–द्वार–मुख
द्वीप–मध्य हो तूर्य–सुमन
ही रसहीन म्लान,

(गमनोत्सुक तुमको देख आज
श्रीहत मम आनन
हीन-मान)।

"हरिचन्दनलित्तङ्गिं, कासिकुत्तमधारिनिं।
तं मं रूपवतिं सन्तिं, कस्स ओहायं गच्छसि।।

हरिचन्दन-रस-लिप्त
सुवासित देह सुघर,
परिधान मेरा-
काशी-निर्मित अंशुक-
है दीपित सुन्दरतर।
इस भांति रूप-लावण्य-
मूर्ति,
किस-हेतु तथा किसके निमित्त
तज मुझको,
कर रहे आज-
प्रिय तुम हो यह संन्यास ग्रहण।

"साकुन्तिकोव सकुणिं, यथा बन्धितुमिच्छति।
आहरिमेन रूपेन, न मं त्वं बाधयिस्ससि।।

शाकुनिक प्रलोभन-जाल-
बिछा,
करता बन्धन में यथा-
विहग,
वस्त्राभूषण-भूषित शरीर,

मण्डित कर सुन्दर
अलक–जाल–
यह रूप–गर्व–सम्बल,
कर सके न कथमपि
बाधित मग।

"इमञ्च मे पुत्तफलं, काळ उप्पादितं तया।
तं मं पुत्रवतिं सन्तिं, कस्स ओहायं गच्छसि।।

यह पुत्र–सुमन–स्निग्ध–
सुष्ठु–उपहार–
तुम्हारा, मुझको–
मैं पुत्रवती,
यह प्रणय–हार।
निश्चय ही त्याग असम्भव है
जिससे सुत करता–
जन्म–ग्रहण
उस मुझको तज
अनुचित प्रिय है–
संन्यास–वरण।

"जहन्ति पुत्ते सप्पञ्ञा, ततो ञाती ततो धनं।
पब्बजन्ति महावीरा, नागो छेत्वाव बन्धनं।।

दुःख, दुसह परिणाम–भूमि
संसार,
जो दुर्निवार,

जन–प्राज्ञ सहज ही
त्याग
पुत्र–दारा–बान्धव–
वैभव–विलास देते विसार।
पद–लौह–शृंखला–बन्ध–
यथा गज कर खण्डित,
हो जाता है उससे वियुक्त,
प्रज्ञा–विभूति–सम्पन्न, तथा
गार्हस्थ्य–विरत,
ले प्रव्रज्या होते विमुक्त।

"इदानि ते इमं पुत्तं, दण्डेन छुरिकाय वा।
भूमियं वा निसुम्भिस्सं, पुत्तसोका न गच्छसि।।

यदि प्रिय सुत का
हे प्रिय! तेरे
क्षुरिका से, अथवा
दण्ड–घात–
द्वारा करके भू–पर निपात।
पश्चात् करूं बनकर–
निष्ठुर बहुशः दुर्गति,
निश्चयतः फिर प्रव्रज्या यह,
सुत–शोक–ग्रस्त
तुमको प्रिय हे!
होगी विस्मृत।

"सचे पुत्तं सिङ्गालानं, कुक्कुरानं पदाहिसि।
न मं पुत्तेकत्ते जम्मि, पुनरावत्तयिस्ससि।।

फेंको सुत को बनकर
निष्ठुर, तुम यदि तत्काल,
बनायें वह निजग्रास
ससुख,
वृक, कुक्कुर–
और श्रृगाल।
नहीं पिता को करुण–भाव–
कर सकते विह्वल,
सम्भव नहीं पराङ्मुख होना
मेरा है संन्यास अटल।

"हन्द खो दानि भद्दन्ते, कुहिं काळ गमिस्ससि।
कतमं गामानिगमं, नगरं राजधानियो।।

दृढ़ निश्चय फिर असमंजस क्यों?
अविलम्ब करें निष्क्रमण–
भ्रमण, संग मेरा–
शुभ–अभिलाष,
पर इतनी विनय बता दें, यह–
परिभ्रमण लक्ष्य संपूर्ति–हेतु
है कौन ग्राम, पुर, नगर
जहां है सम्भव–
पावन–बास।

"अहुम्ह पुब्बे गणिनो, अस्समणा समणमानिनो।
गामेन गामं विचरिम्ह, नगरे राजधानियो।।
अकुशल-कर्म या कुशल-कर्म,
अयथार्थ-यथार्थ पुनीत धर्म,
हम निर्विवेक अज्ञान,
मुक्ति-मार्ग-प्रतिकूल
निरन्तर रहते पद गतिमान।
हम अतीत में-
ग्राम, नगर, पुर, राजनगर
तक बन सहचर
थे-भ्रमणशील अविराम,
पर मुक्ति-मार्ग-अनुगमन-
लक्ष्य,
अब मेरा विश्राम।

"एसो हि भगवा बुद्धो, नदिं नेरञ्जरं पति।
सब्बदुक्खप्पहानाय, धम्मं देसेति पाणिनं।
तस्साहं सन्तिकं गच्छं, सो मे सत्था भविस्सति।।
सम्बोधि प्राप्त भगवा सम्प्रति,
निवृत्ति-प्रदायक दुःखों का,
धर्मोपदेश-कर रहे प्राणि-जन-हेतु
जहां-
सरिनेरञ्जरा-पुण्य-तट-देश।
जाऊं मैं सरि-पुलिन
सन्निकट,

भगवा का बनूं उपासक,
जीवन के अब–
वही हमारे शासक।

"वन्दनं दानि मे वज्जासि, लोकनाथं अनुत्तरं।
पदक्खिणञ्च कत्वान, आदिसेय्यासि दक्खिणं।।

हां, अवश्य,
प्रव्रज्या–निमित्त,
जाओ तुम,
मेरा भी अभिवादन
उस लोकनाथ, लोकोत्तर–
पुण्य–चरण में
कर देना अभिवाचन।
भगवान बुद्ध की–
तीन बार–
कर परिक्रमा तुम सम्पादित
आनन्दित मन,
पश्चात्–
पुण्य मम भाग समर्पण–
संग;
परिक्रमित हो,
करना शतशः वन्दन।

"एतं खो लब्भमम्हेहि, यथा भाससि त्वञ्च मे।
वन्दनं दानि मे वज्जं, लोकनाथं अनुत्तरं।
पदक्खिणञ्च कत्वान, आदिसिस्सामि दक्खिणं।।

मैं दे सकता उपलब्ध
पुण्य का लाभ–
परिक्रमाकृत जो भी,
पर भवति नहीं–प्रव्रज्या से
प्रत्यावर्तन,
निश्चयतः करणीय करूं
कथनीय, यथा तव वचन
मुझे,
कह दूंगा मैं उस लोकनाथ–लोकोत्तर से
तेरा वन्दन।
कर परिक्रमा पश्चात्
अभिक्षण,
पुण्य भाग तव
उसका भी मैं करूं प्रदिक्षण।

"ततो च काळो पक्कामि, नदिं नेरञ्जरं पति।
सो अद्दसासि सम्बुद्धं, देसेन्तं अमतं पदं।

बस,
श्याम–नयन वह उपक;
नेरञ्जना–तट प्रस्थित,
हो गया, जहां भगवा स्थित,
देखा उनको, वह रम्य देश,
कर रहे वहां–
अमृत पद का सुन्दर उपदेश।

"दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं चट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं।।

दुःख और दुःख-उदय (दुक्ख समुत्पाद),
तथा दुःख का संक्षय (दुक्खस्स अतिक्रमणं)
कैसे होती उत्तपत्ति-वर्धना,
उसका एवं निवृत्ति-करण,
वह मार्ग सहज मध्यम-
अष्टाङ्गिक-
पाजायं निवृत्ति, जन
सहज करे यदि मार्ग-वरण।

"तस्स पादानि वन्दित्वा, कत्वान नं पदक्खिणं।
चापाय आदिसित्वान, पब्बजिं अनगारियं।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासन"न्ति।।

कर भगवा का पद-वन्दन,
पश्चात् प्रदिक्षण-
चापा का विनिवेदित कर-
अभिनन्दन।
संसार-त्याग-संकल्प-संग
प्रव्रजित हुआ अनगारिय, उपलब्ध त्रिविध विद्या-
का चय।

सुन्दरी

SUNDARĪ

●

“पेतानि पुत्तानि, खादमाना तुवं पुरे।
तुवं दिवा च रत्तो च, अतीव परितप्पसि।।

पुरा काल में भवति!
तुम्हें है अवगत,
शिशु हुआ काल-कवलित
अबोध था लघुतन,
विक्षिप्ता-सी रात्रि-दिवस
करती रहती थीं-
मर्म-रुदन।

“साज्ज सब्बानि खादित्वा, सतपुत्तानि ब्राह्मणी।
वासेट्ठि केन वण्णेन, न बाळ्हं परितप्पसि।।

वासिट्ठि! बता है कारण क्या
यह कैसा?
आया तुम में परिवर्तन,
सप्ताधिक संख्यक पुत्र,
भवति!
कर क्रूर काल ने-
लिया हरण,

तुम बनी किन्तु निष्करुण
नहीं कथमपि क्रन्दन।

"बहूनि पुत्तसतानि, ञातिसङ्घसतानि च।
खादितानि अतीतंसे, मम तुय्हञ्च ब्राह्मण।।

शतशः सुत, बन्धु-ज्ञाति-बान्धव
ब्राह्मण! अतीत कालावयव,
कर चुका क्रूर निजग्रास-
हमारे-
किन्तु न केवल
संग-संग निश्शंक तुम्हारे।

"साहं निस्सरणं ञत्वा, जातिया मरणस्स च।
न सोचामि न रोदामि, न चापि परितप्पयिं।।

जन्म-मरण-बन्धन-
निदान,
शुचि मार्ग कर लिया ज्ञात-
सुगम-निर्वाण।
इस हेतु न करती दुःख
नहीं क्रन्दन-विलाप,
अब मैं हूँ-
निश्चिन्त हो चुकी-
है अपसरित हृदय-परिताप।

"अब्भुतं वत वासेट्ठि, वाचं भाससि एदिसिं।
कस्स त्वं धम्ममञ्ञाय, गिरं भाससि एदिसिं।।

निश्चय ही वासिट्ठि!
महद् अद्भुत–
तेरी वाणी से प्रस्फुटित
कथन,
वह कौन धर्म ? कर ज्ञात–
जिसे,
कह रही तुष्ट–
आनन्दित–मन।

"एस ब्राह्मण सम्बुद्धो, नगरं मिथिलं पति।
सब्बदुक्खप्पहानाय, धम्मं देसेसि पाणिनं।।

वह धर्म परमपावन ब्राह्मण!
जो दुःख-समुच्चय से–
निश्चयतः मुक्ति दिलाता,
उसका जो उपदेश–
प्राणिजन-हित, सम्बुद्ध-बुद्ध–
मिथिला-स्थित कर रहे
वही,
उसके हैं शास्ता।

"तस्स ब्रह्मे अरहतो, धम्मं सुत्वा निरूपधिं।
तत्थ विञ्ञातसद्धम्मा, पुत्तसोकं ब्यापनुदिं।।

कर श्रवण,
धर्म आसक्ति-रहित
भगवा-
अरहंत-बुद्ध-संशित।
कर पूर्णरूप से ज्ञात,
वहां सत्-धर्म,
धर्मानुदेश हो सम्प्रेषित
अति सहज किया-
अपसारित अब
मेरा सब वह
सुत-शोक-मर्म।

"सो अहम्पि गमिस्सामि, नगरं मिथिलं पति।
अप्पेव मं सो भगवा, सब्बदुक्खा पमोचये।।

मैं भी जाऊंगा,
अब निश्चय।
उस रम्य नगर मिथिला,
सम्प्रति,
देशना-निरत भगवा-
स्थित,

कर सकूं प्राप्त-पथ-निर्देशन
जिससे-
हों अपहृत दुःख-निचय।

"अद्दस ब्राह्मणो बुद्धं, विप्पमुत्तं निरूपधिं।
स्वस्स धम्ममदेसेसि, मुनि दुक्खस्स पारगू।।

सम्बुद्ध-बुद्ध, दुःखादि-मुक्त
जित-राग-द्वेष,
उपशमित-क्लेश
दुःख-पारग जो-
भव-बन्ध-निवारक
जाकर ब्राह्मण ने
देखा-
कर रहे धर्म-उपदेश
सन्तृप्त सहज अन्तर्मन-
थी हो खचित गयी
फिर मस्तक पर-
आनन्द-भूति की रेखा।

"दुक्खं दुक्खसमुप्पादं, दुक्खस्स च अतिक्कमं।
अरियं अट्ठङ्गिकं मग्गं, दुक्खूपसमगामिनं।।

सम्यक् प्रवृत्त हो,
शुद्ध-चित्त, जिज्ञासु रूप

भगवा-देशना।
वह प्रवचन सुनकर
विज्ञात किया-
आदर्श-नियम के संग-संग
दुःख क्या है,
क्या दुःख उदय-हेतु
कैसे उन पर हो-
प्राप्त विजय ?
दुःख-संक्षय का बस एक
मार्ग जो सुगम
मात्र अष्टांग अरिय (आर्य)।

"तत्थ विञ्ञातसद्धम्मो, पब्बज्जं समरोचयिं।
सुजातो तीहि रत्तीहि, तिस्सो विज्जे अफस्सयिं।।

बुद्धोपदेश-संस्पृष्ट हुआ-
अन्तर्मन था,
वह वाह्य-अन्तः परिशुद्ध-
शान्त,
हो गया प्रव्रज्या-प्रति,
अभिमुख,
कारण-
अब उसको थे अवगत
वह आर्य धर्म के

चार सत्य,

पश्चात्, रात्रि-त्रय-

ध्यान-अवधि-उपलब्ध-

त्रिविद्या,

हुआ दान्त।

"एहि सारथि गच्छामि, रथं निय्यादयाहिमं।

आरोग्यं ब्राह्मणिं वज्ज, पब्बजि दानि ब्राह्मणो।

सुजातो तीहि रत्तीहि, तिस्सो विज्जा अफस्सयि।।

ब्राह्मण सुजात ने दिया-

त्वरित आदेश,

संयमित हृदय था शान्त भाव-

निज सारथि को-

अचिराद् करो रथ सम्प्रेरित

मम भवन-देश।

ब्राह्मणि-हित शुभ-आश

निरन्तर रहें निरोगित,

तदनन्तर शुभ-वृत्त

हो चुका हूँ मैं प्रव्रजित।

संग-संग उसके अनवद्या,

रात्रि-त्रय की ध्यान-अवधि-

में लब्ध हो चुकी-

मुझे त्रिविद्या।

"ततो च रथमादाय, सहस्सञ्चापि सारथि।
आरोग्यं ब्राह्मणिंवज्ज, पब्बजि दानि ब्राह्मणो।
सुजातो तीहि रत्तीहि, तिस्सो विज्जा अफस्सयि।।

इस भाँति निदेशित सारथि,
पाकर–
दशमांश अयुत्त पाथेय–
राशि कार्षापण,
रथ हांक त्वरित गति
पहुँच–प्रथमतः
भार्या–ब्राह्मणि के हेतु
किया शुभ–आशा,
पश्चात् शुभावह वृत्त
एवं उसकी परिभाषा–
हो चुका प्रव्रजित ब्राह्मण।
साथ ही उसके अनवद्या,
रात्रि–त्रय की ध्यान–अवधि
में–लब्ध हो चुकी–
मुझे त्रि–विद्या।

"एतञ्चाहं अस्सरथं, सहस्सञ्चापि सारथि।
तेविज्जं ब्राह्मणं सुत्वा, पुण्णपत्तं ददामि ते।।

है परिज्ञात शुभ–वृत्त तुम्हें
हे सारथि!

मैं भी अवगत, तुमसे
सुनकर–
प्रव्रजित हुआ ब्राह्मण
तिस्सो विज्जा (त्रि–विद्या)
पाकर।
रथ–संग लो तुम ये अश्व–युगल
दशमांश अयुत कार्षापण,
सानन्द करो प्रस्थान,
न अर्द्धदान करती कथमपि
है पूर्ण पात्र यह अर्पण।

"तुय्हेव होत्वस्सरथो, सहस्सञ्चापि ब्राह्मणि।
अहम्पि पब्बजिस्सामि, वरपञ्ञस्स सन्तिके।।

दशमांश अयुत कार्षापण–
संग रथ अश्वयुगल,
निर्मूल्य व्यर्थ, मम–हेतु
मात्र तुमको हो शोभन,
प्रज्ञा–प्रबुद्ध–सन्निकट
जा रहा हर्षित–मन।
तत्क्षण ही शुभ–काल यही
निर्णय मेरा–
कर सकूं प्रव्रज्या–
दिव्य–वरण।

"हत्थी गवस्सं मणिकुण्डलञ्च, फीतञ्चिमं गहविभवं पहाय।
पिता पब्बजितो तुय्हं, भुञ्ज भोगानि सुन्दरि!
तुवं दायादिका कुले।।

गज, अश्व अनेक
गवादिक घन,
मणि-कुण्डल, बहुशः
अन्य रत्न, स्वर्णादि-विभव-विस्तार,
उसे मोह का पाश
मान निस्सार।
प्रव्रजित हो गये-
वैभव-संग गृह-त्याग,
आज
सुन्दरि! हे पुत्रिके,
तुम्हारे तात।
अतएव पुत्रि! उपभोग-वस्तु-
है तेरी, यह वैभव-संसार,
करो उपभोग-
कुलागत भी तो तेरा है
अधिकार।

"हत्थी गवस्सं मणिकुण्डलञ्च, रम्मं चिमं गहविभवं पहाय।
पिता पब्बजितो मय्हं, पुत्तसोकेन अट्टितो।
अहम्पि पब्बजिस्सामि, भातुसोकेन अट्टिता।।

गज, अश्व, गवादिक
स्वर्ण, रतन-
से सम्भूषित,
यह रम्य भवन,
उसके संग तज वैभव-विलास
हे जननि मेरे प्रियतात,
हो गये प्रव्रजित-
सह न सके यदि-
पुत्र-शोक-आघात।
भ्रातृ-शोक में भी तद्‌वत्
न कर सकती हूं विस्मृत,
इसलिए पितृ-सम-
त्याग सभी-
हो जाऊंगी मैं भी,
प्रव्रजित।

"सो ते इज्झतु सङ्कप्पो, यं त्वं पत्थेसि सुन्दरि।
उत्तिट्ठपिण्डो उञ्छो च, पंसुकूलञ्च चीवरं।
एतानि अभिसम्भोन्ती, परलोके अनासवा।।

हो पूर्ण हृदय-अभिलाष,
हे सुन्दरि!
तव संकल्प अनुत्तर,
निष्क्रमण,

प्रव्रजन-वरण,
निस्पृहाचरण।
पुर, गांव, नगर-भिक्षार्थ-अटन-
जीवन-यापन।
तन शकल-संवलित-
कासायाम्बर।
उच्छिष्ठ-अशन, भव-मोह-शमन-
अनुवृत्त-चित्त,
परलोक-साधना-पथाभिमुख
अधिगमित चरण।

"सिक्खमानाय मे अय्ये, दिब्बचक्खु विसोधितं।
पुब्बेनिवासं जानामि, यत्थ मे वुसितं पुरे।

त्रय-विद्‌या का साक्षात्करण
हे आर्ये! मैं-
सम्प्राप्त-
प्रशिक्षित अब सम्यक्,
परिशुद्ध-चित्त, साधना-वित्त
प्रत्यक्ष हो रहे कृत्य-
किये जो अब तक।
हैं उन्मीलित मम दिव्य नयन,
संग वर्तमान मेरा अतीत,
संश्लिष्ट-दृष्ट,

किस भांति कहां-
मेरा निवसन।

"तुवं निस्साय कल्याणि, थेरि सङ्घस्स सोभने।
तिस्सो विज्जा अनुप्पत्ता, कतं बुद्धस्स सासनं।।

कल्याणि!
उत्तम सखि-सहायक,
तव वचनं उद्बोध-दायक,
प्राप्त उनसे मैं सतत
प्रेरण-उद्बोधन,
हे सर्वप्रिये! भगिनी-समाज-
श्रीशोभन,
अवगत विद्या-त्रय-संविभूत,
है बुद्धधर्म-देशनानुप्राणित,
हे आर्ये! यह मेरा मन।

"अनुजानाहि मे अय्ये, इच्छे सावत्थि गन्तवे।
सीहनादं नदिस्सामि, बुद्धसेट्ठस्स सन्तिके।।

श्रावस्ती-गमनोत्सुक-मानस,
मम अभिलाष-निवेदित,
कर दें, अनुमत आर्ये भगवति!
हो सकूं ससुख मैं प्रस्थित।

जा वहां उपस्थित होकर
मैं सम्बुद्ध-निकट,
कर दूं उद्घोषण सिंहनाद-
सदृश, प्रकटित हर्षातिरेक
मैं हुई आज संयमित-चित्त।

"पस्स सुन्दरि सत्थारं, हेमवण्णं हरित्तचं।
अदन्तां दमेतारं, सम्बुद्धमकुतोभयं।।

(पहुंच श्रावस्ती यथाक्रम
बन विहारिनि-
शास्ता-धर्म-नियम-
अनुगामिनि,
अति-आनन्द प्रफुल्लित-तन
सुन्दरी लगी करने मुखरित-
थी स्वगत-वचन-)
देखो सुन्दरि! शास्ता महान्
शुभ दिव्य वर्ण,
अनुपम स्वरूप जो-
स्वर्ण-सदृश हैं दीप्तिमान।
उसको, प्रबुद्ध जो बोधि-प्राप्त-
अतिनिर्भय,
अशरण-शरण, शरण-गत-
जो सम्बुद्ध-निकट-

वह अकुतोभय।

"पस्स सुन्दरिमायन्तिं, विप्पमुत्तं निरूपधिं।
वीतरागं विसंयुत्तं, कतकिच्चमनासवं।।

देखो मुझ सुन्दरि को, प्रबुद्ध
आसक्ति-रहित,
संवेग-शमित-
भव-राग-द्वेष-बन्धन-
विमुक्त,
है जन्म-मरण-संविजित,
कराने वृत्त विदित।
मन-वृत्ति-निवृत्त,
भव-भोग-च्युत
आ रही मुक्ति पर-
विजय-प्राप्त
कृत-कृत्य-निरास्रव
शुद्ध-बुद्ध।

"बाराणसितो निक्खम्म, तव सन्तिकमागता।
साविका ते महावीर, पादे वन्दति सुन्दरि।।

(अनुभूताशंकित-
शास्ता-मन-आश्वस्ति-हेतु

है कौन, कहां से आयी-
यह 'सुन्दरी' नामिका-)
बोली-करती-सी सत्य-
प्रकट,
मैं वाराणसी नगर-अभ्यागत
समुपस्थित, अभिलषित,
सुखद-सान्निध्य
सश्रद्धा, पद-युगल
कर रही वन्दन,
हे महासत्त्व!
यह तव उपासिका
हूं मैं श्राविका।

"तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुय्हं धाताम्हि ब्राह्मण।
ओरसा मुखतो जाता, कतकिच्चा अनासवा।।

तुम हो प्रबुद्ध,
तव नियम-धर्म-अनुगामिनि
मैं हूं, शास्ता!
तव अन्तर्मन-अभिप्रेरित,
मुखरित मुखर-गिरा-
मुख-धर्म प्रवर्तित,
ब्राह्मण हे!

मैं हूं तव औरसधीता,
मुख से उद्गत
भव-भोग-च्युत
कृत-कृत्य निरास्रव,
राग-रहित-सुविनीता।

"तस्सा ते स्वागतं भद्दे, ततो ते अदुरागतं।
एवञ्हि दन्ता आयन्ति, सत्थु पादानि वन्दिका।
वीतरागा विसंयुत्ता, कतकिच्चा अनासवा"ति।।

कर तुम अधिगत धर्म यथावत्
हुई उपस्थित,
भद्रे! करता 'मैं' स्वागत।
यह सुगममार्ग केवल
भद्रे! सान्निध्य-प्राप्तिका
मेरे,
जो आत्मविजय कर
आर्य मार्ग अनुगामिन्,
रागानुराग, मन-भाव-वेग
गति-प्रबल विनाशिन्।
कर भग्न चुके जो
भव-बन्धन के घेरे-
वेवी तराग, संयमित

परिष्कृत चित्तभाव
करते शास्ता-
पद-वन्दन,
कृत-कृत्य निरास्रव,
शुद्ध-बुद्ध,
करता तेरा अभिवन्दन।

सुभाकम्मारधीता

SUBHĀKAMMĀRADHĪTĀ

•

"दहगाहं सुद्धवसना, यं पुरे धम्ममस्सुणिं।
तस्सा मे अप्पमत्ताय, सच्चाभिसमयो अहु।।

मैं पहले तरुणी (कुंवारी) थी, जब–
मेरी तरुण–अवस्था,
शुभ–शुद्ध–शुभ्र ममधवल–
वसन,
मन रही कदाचित् आस्था,
जब मिला सु–अवसर,
शास्ता के सुन लिये–
वहाँ थे धर्म–वचन।
अब आर्य–सत्य प्रत्ययापन्न,
अन्तर्मन मम,
जो शील–धर्म–अनुगमन–वृत्ति–
का ज्ञान हुआ स्पष्ट परम।

"ततोहं सब्बकामेसु, भुसं अरतिमज्झगं।
सक्कायस्मिं भयं दिस्वा, नेक्खम्ममेव पीहये।।

उद्विग्न–हृदय
भौतिक सुखसे
संवेद्य–भाव उत्थापक,
सत्यकाय–हेतु भय–आशंका–
है दिला रहा–
अब ज्ञान–चक्षु–

आभास,
त्यागोन्मुखी-प्रवृत्ति,
प्रव्रज्या ही-
मेरा अभिलाष।

"हित्वानहं ञातिगणं, दासकम्मकरानि च।
गामखेत्तानि फीतानि, रमणीये पमोदिते।।

सम्बन्धी सकल-समाज-
त्याग,
निज भृत्यवर्ग-ममता-
विराग।
समभूमि मेंखलायित जिससे
वह शस्य-क्षेत्र,
रमणीय रम्य,
शाद्बल-शोभित-पथ,
पथिन् गम्य।
मम ग्राम-धाम-
जीवन-सुख के उपकरण-करण-
मन-मोद-भरण।
मणि-कनक रजत-
सब त्यजित,
बुद्ध-धर्म-संग संघ-
रत्न-त्रय-हेतु-
प्रव्रजित।
"पहायहं पब्बजिता, सापतेय्यमनप्पकं।

एवं सद्धाय निक्खम्म, सद्धम्मे सुप्पवेदिते।।
"नेतं अस्स पतिरूपं, आकिञ्चञ्ञिह पत्थये।
यो जातरूपं रजतं, छड्डेत्वा पुनरागमे।।

सम्बुद्ध-प्रबोधित-
आर्य धर्म सुन,
अन्तर्मन-
मम सुष्ठु विबोधित।
सश्रद्धा प्रव्रजित,
हुआ आकांक्षा-जग
अब आज परित्यजित।
त्यक्त सकल भौतिक-सुख
उनमें अब आसक्ति-
असम्भव,
भाव-अकिञ्चन-अभिलाषिणि
को व्यर्थ धनादिक-
वैभव।
स्वर्णादि कतज देने का
कर एक बार अभिलाष-
पुरुष यदि,
पुनरासक्ति-निमज्जित हो
वह विज्ञ-जनों का
बन जाता उपहास।
"रजतं जातरूपं वा, न बोधाय न सन्तिया।

नेतं समणसारुप्पं, न एतं अरियद्धनं।।

रजत स्वर्ण सम्पत्ति,
नहीं हो सकती साधन–
धर्म–मार्ग–ज्ञानार्थ,
प्राप्त न हो तो शान्ति
और न आभासित–
निर्वाण।
इन सबका परिग्रहण–
न कथमपि–
श्रमण–धर्म अनुरूप,
न सम्भावित है–
श्रद्धा–धन।
न आर्यभाव–भावक
ये धन,
न आर्य (श्रेष्ठ) धर्म–सम्भावक–
किञ्चिद् भी इनका परिमाण।

"लोभनं मदनञ्चेतं, मोहनं रजवड्ढनं।
सासङ्कं बहुआयासं, नत्थि चेत्थ धुवं ठिति।।

(स्वर्णादिक धन)
लोभ, मोह–मद–
सब उत्पादक
स्वच्छन्द–वृत्ति–उत्थापक,
रागानुराग–संग,

रजस् धर्म,
अविवेक-भाव-सम्भावक।
नष्ट, क्षति-अपहृति-
भय-बोधक,
रहता शंका-संपीडित मन,
श्रम साध्य किन्तु-
इसका रक्षण,
चञ्चल-मन-गति-सम
यह चञ्चल,
है बुद्धि-हतक,
तृष्णा-विबोधकर,
नश्वर।

"एत्थ रत्ता पमत्ता च, संकिलिट्ठमना नरा।
अञ्ञमञ्ञेन ब्यारुद्धा, पुथू कुब्बन्ति मेधगं।।

धन-वैभव में आसक्त-
हुआ जो मानव,
कलुषित-मन वह,
अविवेक-ग्रस्त-
हो जाता वह सीमित-
निजतक,
धन-मद-प्रभाव-
सुत-संग जननि,
जननी-संग सुत,

कर प्रकृत स्नेह को विस्मृत,
रखते हैं निज को
पृथक्-पृथक्।
पहले जो स्नेह मधुरतर,
कलुषित वह कलह परस्पर।
धन-मादकता-
मधु-मधुता, हर
मानव-मन विकृत-
कर देता वृत्ति कलहकर
जन करता कलह
परस्पर।

"वधो[१] बन्धो परिक्लेसो, जानि सोकपरिद्दवो।
कामेसु अधिपन्नानं, दिस्सते ब्यसनं बहुं।।

ज्ञाति, स्नेहिजन-निधन,
द्वन्द्व, कलह, अपराध-जनित-
प्रतिफल बन्धन,
धन-वैभव, परिवार-जनों-
की क्षति अथवा संपीडन
मानसिक त्रास दैहिक विनाश,
सब, शोक-हेतु
अन्तर्मन होकर उद्वेलित,
अति सहज प्रकृति-
उपजाता है संवेदन,

परिदेवन।
दुर्नियति, भयानक फलदायी,
आसक्ति,
जगत्-सुख-आश,
निश्चयत:
इसमें रहता है-
बहु विध व्यसनों
का वास।

"तं मं ञाती अमित्ताव, किं वो कामेसु युञ्जथ।
जानाथ मं पब्बजितं, कामेसु भयदस्सिनिं।।

मम अलाभ-अभिलाषित्
मेरे बान्धवजन,
ये शत्रु-सदृश, कर रहे-
हृदय को उत्प्रेरित,
बहुश: दे रहे प्रलोभन-
करले तद्वत् स्वीकार,
भौतिक जीवन-आचार।
आश्चर्य!
उन्हें यह ज्ञात कि मैं-
निष्क्रमित,
देख, सांसारिक जीवन में
आसक्त, भयावह-
हर क्षण भय-बोध
अवस्थित,

हो गयी प्रव्रजित,
है तथापि उनका यह
व्यापार।

"न हिरञ्ञसुवण्णेन, परिक्खीयन्ति आसवा।
अमित्ता वधका कामा, सपत्ता सल्लबन्धना।।

दुःख, दुराशय-शमन-
अतिक्रम,
न कथमपि सम्भव
कर ले हम-हिरण्य राशि
एकत्र भले हम।
भौतिक सुख-
भोगादि-लालसा-
निर्मम शत्रु विघातक,
रागादिक-बन्धन-संपीडक
बाण-सदृश प्राणान्तक।

"तं मं ञाती अमित्ताव, किं वो कामेसु युञ्जथ।
जानाथ मं पब्बजितं, मुण्डं सङ्घाटिपारुतं।।

मम-अलाभ-अभिलाषिन्
मेरे बान्धव-जन,
रिपु-समान कर रहे-
हृदय मम अनुप्रेरित,
दे रहे अनेक प्रलोभन,

कर लूं तद्वत् स्वीकार–
भौतिक जीवन–आचार।
आश्चर्य!
ज्ञात है उनको, मैं–
निष्क्रमित,
प्रव्रजित–
संघाटी (चीवर) आवेष्टित तन
अब होकर मुण्डित।

"उत्तिट्ठपिण्डो उञ्छो च, पंसुकूलञ्च चीवरं।
एतं खो मम सारुप्पं, अनगारूपनिस्सयो।।

घर–द्वार गमन,
भिक्षार्थ–अटन,
उच्छिष्ठ–अशन, जीवन–यापन,
तन, शकल–संवलित–
कासाय–वसन,
निष्क्रमित, प्रव्रजित–
अब ममानुरूप,
शुभ जीवन का यह,
परिष्कार,
प्रव्रजित–संघ–संग–
आश्रम में
जीवन–जीवित–उपचार।

"वन्ता महेसीहि कामा, ये दिब्बा ये च मानुसा।
खेमट्ठाने विमुत्ता ते, पत्ता ते अचलं सुखं।।

बुद्धादि श्रेष्ठजन, महासन्त,
भोगादिरूप–आंकांक्षा–
से जो अनानुरक्त–
सम्बुद्ध,
शुचि देवलोक अथवा
धरती पर स्थित,
वह जो विमुक्त है–
शान्ति–भाव–अधितिष्ठित।
निर्वाण–अचल–सुख की–
सीमा, निरूपद्रव–
जो है निर्–अनय,
बस,
वही मार्ग अनुगम्य
यही अब मेरा निर्णय।

"माहं कामेहि संगच्छि, येसु ताणं न विज्जति।
अमित्ता वधका कामा, अग्गिक्खन्धूपमा दुखा।।

विषयादि–भोग–अनुबन्धन–
से है मुक्ति कठिन–
निरुपाय,
तद्–अनुवर्तिनि–
वशवर्तिनि, मैं–

कथमपि न बनूं,
मम अभिप्राय।
निर्मम–शत्रु विघातक–
हैं रागादिक बन्धन,
अग्नि पुंज–सदृश–
होता, यह
दुःख–निचय–
अति तापक।

“परिपन्थो एस भयो, सविघातो सकण्टको।
गेधो सुविसमो चेसो, महन्तो मोहनोमुखो।।

रागादिक–संसक्त–
भोग–पथ,
यह अनर्थकर,
चित्त–विघातक,
तीक्ष्ण बाण–संघात–
शल्य–उत्पादक।
लोभ–मोह–मधु–भूमि
विषम नत–उन्नत–
पथ–यह
(चित्त अस्थिर कारक)
दुरतिक्रमण–दुर्गुण–गुण–
दूषित (गति मारक),
मोह–भाव–विस्तारक।

मूर्च्छना–छलित, हो–
बुद्धि–शून्य जाता
पथ गामिन्
महा–निपुण।

"उपग्गो भीमरूपो, कामा सप्पसिरूपमा।
ये बाला अभिनन्दन्ति, अन्धभूता पुथुज्जना।।

भौतिक जीवन
यह रागादिक–सुख–भोग
अनय–पथ
संकटमय, अतिघोर–
भयानक,
अविवेकी–जन, मूर्ख
मात्र,
करते इस पर संचरण,
अथवा
सामान्य अशिक्षित,
अज्ञानान्ध–
मोह–मद–रत,
नहीं लालसा का, जो
कर सके संवरण।

"कामपङ्केन सत्ता हि, बहू लोके अविद्दसू।
परियन्तं न जानन्ति, जातिया मरणस्स च।।

अज्ञानी जन जो अविवेकी
रागानुरक्त,
विषयादिभोग-कर्दम-निमग्न,
सुख-भास मग्न।
निर्बाधित क्रम,
मन-आसन पर-
बैठा विभ्रम।
हो ज्ञान-बोध,
निष्क्रिय परन्तु-
सीमा; असीम-आबद्ध?
सुगम मग कौन?
करे अनुगमन, लालसा-दमन
वह जन्म-मरण कृत बन्धन-
हो सकते कैसे मुक्त।

"दुग्गतिगमनं मग्गं, मनुस्सा कामहेतुकं।
बहुं वे पटिपज्जन्ति, अत्तनो रोगमावहं।।

विषयादि-भोग-अनुरक्ति-
वृत्ति, मानव-प्रवृत्ति,
दुर्गति-आमंत्रक,
नियम-भोग-भावक,
अतिदुर्गम,
करता है वह मार्ग-
अनुगमन,

जहां आत्म-संताप-संग,
जो आदि-व्याधि-दायक
जिसमें-
पग-पग पर हैं दुर्वृत्त।

"एवं अमित्तजनना, तापना संकिलेसिका।
लोकामिसा बन्धनीया, कामा मरणबन्धना।।

(भौतिक जीवन, विषयादि-भोग)
शत्रुता-भाव-अभिजनक
परस्पर,
ये दुस्तर, हितहर, अनिष्टकर
संतापक ये-
मन-भाव-क्रिया-
इनसे दूषित,
हो जाते सहज अशेष,
संतप्त-हृदय, संक्षुब्ध-
विवश जन-
करता पश्चाताप,
सहन उसे फिर करना पड़ता-
दुस्सह आत्म-क्लेश।
दैहिक सुख, सम्पत्ति-विभव-
प्रति, लोभ-विवर्द्धन,
यह सब-

भव-बन्धन-हेतु,
तथा संगमित,
सदा इन्हीं से-
जरा-मरण।

"उम्मादना उल्लपना, कामा चित्तप्पमाथिनो।
सत्तानं संकिलेसाय, खिप्पं मारेन ओड्डितं।।

भौतिक जीवन,
सुख-दुःख का रहता-
द्वन्द्व जहां,
नित परिवर्तन।
रागानुराग, मोहक-बन्धन,
प्रिय का प्रिय-संग-संयोग,
पुनः जब परिवर्तन-
होता वियोग।
उससे होता फिर शोक,
शोकातिरेक वश-
हो जाता उन्मादित जन,
परिणति-
उसकी सुख-दुःख मिश्रित,
सुख-प्राप्ति-ललक-आक्रान्त,
सतत 'सुख-सुख-सुख'
इति, होता मूर्च्छन्।
फिर अतीत-संग वर्तमान-

भावी चिन्तन,
अन्तर्मन्थन।
संतापक यह कामभयोग—
शिव-वधक,
काम सुघर, दारुण विषधर—
सदृश, बनता,
अस्तित्व-हतक।

"अनन्तादीनवा कामा, बहुदुक्खा महाविसा।
अप्पस्सादा रणकरा, सुक्कपक्खविसोसना।।

परिणाम असीमित उपजाते,
भौतिक जीवन, कामादिराग,
अतिशय भयकर,
नारकीयताप-सम-
दुःख निचय,
दंशित कर विष से जन्माता,
जैसे विषधर।
सुख-भोग क्षणिक,
भ्रम-भ्रमित-हृदय,
संक्षोभ भाव-कलहासादित,
अन्तः प्रवृत्ति,
सम्भ्रम-प्रेरित,
शुभकर्म सतत संबाधित।

"साहं एतादिसं कत्वा, ब्यसनं कामहेतुकं।
न तं पच्चागमिस्सामि, निब्बानाभिरता सदा।।

बुद्धोपदेश कर पुण्य श्रवण,
श्रद्धाभिभूत,
अब विगत-मोह
भव-राग-भोग-निवृत्त,
प्रव्रजित मुझे,
निर्वाण-मार्ग अभिप्रेत,
जहां है प्रवहमान
आनन्द-शान्ति-सुख-स्रोत।
सतत रहूं स्नात,
पराङ्मुख-
जग-मोह-शोक-सुख-
अद्यकारक,
उसमें कथमपि न हो सकती
मैं अब प्रवृत्त।

"रणं तरित्वा कामानं, सीतिभावाभिकङ्खिनी।
अप्पमत्ता विहस्सामि, सब्बसंयोजनक्खये।।

कामादिक-अनुराग-विरति-
भावोत्प्रेरित,
संघर्ष-निरत,
अर्हत्व-परमपद् -आकांक्षिणि-

मैं हूँ अविरत।
यह सतत रहेगा यत्न,
न यावत्
भव-बन्धन अपक्षयित कर सकूं,
मिले मुझे अभित्राण,
हो क्षीण न कथमपि-
मनका मेरे उत्साह-
प्राप्ति का-
स्थायी निर्वाण।

"असोकं विरजं खेमं, अरियट्ठङ्गिकं उजुं।
तं मग्गं अनुगच्छामि, येन तिण्णा महेसिनो।।

वह मार्ग सहज, निर्मल
जन को जिसमें-
मिलती है शोक-विरति,
सुखकर वह है-
कल्याण-भवन,
बुद्धादि महर्षि महासत्त्वाद्रित,
अनुगमित-प्रथित,
जिसमें सम्भव हो सका-
सहज संसार सिन्धु के
पार गमन।
करके उनका पग-अनुवर्तन,
आर्य अष्टांगिक मार्ग-गमन,

मैं बन सकती उनके सदृश,
कर शीलादिक शुचि–
धर्म–चरण,
आश्रयी वहाँ हैं जहां–
साधु–श्रमणादि प्रतिष्ठित।

"इमं पस्सथ धम्मट्ठं, सुभं कम्मारधीतरं।
अनेजं उपसम्पज्ज, रुक्खमूलम्हि झायति।।

शुभा, सुता, देखो! उसकी
जो स्वर्णकलाकृति–
कर्म प्रतिष्ठित,
आर्य मार्ग–अनुगमित–
आज वह धर्म–अधिष्ठित।
अपगत सब तृष्णादि–भाव,
अधिगमित उसे
अब पूर्ण ज्ञान,
लम्बित–विस्तृत–
तरु–शाख–तले,
आत्म स्थित–
तल्लीन–लीन कर रही–
ध्यान।

"अज्जट्ठमी पब्बजिता, सद्धा सद्धम्मसोभना।
विनीतुप्पलवण्णाय, तेविज्जा मच्चुहायिनी।।

प्रव्रजित हुए गत–
अष्ट दिवस,
श्रद्धा–संहित
करके अधिगम सद् धर्म–
आज वह शोभित,
उत्पलवण्णा–उपदिष्ट धर्म–
सद्ज्ञान–ज्योति–
अनु ज्योतित।
विश्वस्त–चित्त,
संयमित–वृत्ति
विद्या–त्रय अब–
वह मृत्यु–विजित।

"सायं भुजिस्सा अणणा, भिक्खुनी भावितिन्द्रिया।
सब्बयोगविसंयुत्ता, कतकिच्चा अनासवा।।

कामादि–मोह–दासत्व भाव–
अभिग्रस्त रही,
कर अपसारित–
स्व–वशीभूत,
अब नहीं,
जन्म या कर्म–ऋणी,
वह परममुक्त,
इन्द्रिय–संयम–कर्मानुष्ठित,
उत्तमकोटिक–
परिगणित–प्रशिक्षित

अब दीक्षित हो गयी
भिक्षुणी।
वह बन्धन-निर्बन्ध
सर्वथा,
अब सद्धर्म-प्रवीन
बुद्ध-धर्म-पथ-लीन,
ज्ञानरता, कृत-कृत्य,
सभी आस्रव हैं-
उसके क्षीण।

"तं सक्को देवसङ्घेन, उपसङ्कम्म इद्धिया।
नमस्सति भूतपति, सुभं कम्मारधीतर"न्ति।।

(बुद्ध धर्म-पथ-लीना,
सद्धर्म-प्रवीना,
प्रव्रजिता-आस्रवहीना
आचरण शुभा का-)
निज दिव्य-चक्षु
कर उनमीलित-
देवेन्द्र शक्र ने-
धर्मरता, शास्ता-शंसित,
विस्मयापन्न, सानन्द
शुभा को देखा,
मन-तोष, सुखद-उल्लास-
जन्य,
हो गयी खचित
उन्नत ललाट पर रेखा।

देवेन्द्र शक्र निज–
भूति–भास
संगमित सकल,
सुरगण–विलास।
अवतरित प्राणि–सम्राट्,
धरा पर
पहुंच निकट पुत्रिका–
शुता–
उसकी जो करता–
स्वर्णकलाकृति–कर्म
सुघर।
दिविलोक–प्राणि जन–
मन–रञ्जन,
देवेन्द्र शक्र ने विनत–प्रणत
जा किया शुभा का
अभिवन्दन।

सुभाजीवकम्बवनिका

SUBHĀJĪVAKAMBAVANIKĀ

•

"जीवकम्बवनं रम्मं, गच्छन्ति भिक्खुनिं सुभं।
धुत्तको सन्निवारेसि, तमेनं अब्रवी सुभा।।

सुखद-शीतलच्छाय
द्रुमामलि-युक्त-सघन
अति सुभग-
रमणकर,
वह कौमार-मृत्त-
जीवककी आम्रवनी,
एक दिवस,
दिवस-परिभ्रमण-हेतु
था मन स्थिर
रही विहर
भव-राग-विजित,
संयमित-शमित-तृष्णा
उसमें थी-
शुभा भिक्षुणी।
वैभव-भूति-विलासिन्
शुचिनगर-
राजगृह-वासिन्
स्वर्णकार-सुत,
रूपवान् जो यौवन-गर्वित;

सुख-विहार-रत
विचरणशीला-
रूपराशि-संन्यासिन्पर,
रस-रसिक-धूर्त की
मुग्ध-दृष्टि हो गयी।
शुभा;
पतित।
भार्गवरोधकर हुआ-
उपस्थित,
अनुमान भाव कलुषित-
मनका,
निर्भीक भाव
शुचिगिरा सुभा की
थी मुखरित,
स्वर सुव्यवस्थित।

"किं ते अपराधितं मया, यं मं ओवरियान तिट्ठसि।
न हि पब्बजिताय आवुसो, पुरिसो सम्फुसनाय कप्पति।।

शुभा-हो गया कौन ? कब ? कैसा है-
अपराध,
आ तुम मेरे मार्ग-मध्य
हो खड़े किये-
अवरोध
कैसे ? मैं क्यों हूँ अपराधिनि?

जिसका तेरे मन
उपजा यह प्रतिशोध,
आयुष्मन् हे,
स्वर्णकार-सुत!
कार्य यह अनुचित,
शुद्धचित्त नारी का तुम
अवरोध किये पथ-
स्थित।
रागानुग-पथ त्याग चुकी
उन्मुक्त करो पथ मेरा
रागायित-मन, उद्धत-प्रवृत्ति
हे बन्धु!
आचरणं, परम अशोमन,
तेरा।
मैं प्रव्रजित,
शोक-सुख-त्यजित,
न कथमपि,
राग-अमर्ष,
लोकधर्म-आचार-विहित-
भिक्षुणी-बिम्ब तक
पुरुष-हेतु है
योग्य नहीं स्पर्श।

"गरुके मम सत्थुसासने, या सिक्खा सुगतेन देसिता।
परिसुद्धपदं अनङ्गणं, किं मं ओवरियान तिट्ठसि।

शास्ता-अनुशासन-अनुशासित
स्थिरचित्ता हूँ,
धर्म-अटल,
प्रव्रजित भिक्षुणी मैं जिसका-
सम्मा सम्बुद्ध-वचन-
उपदिष्ट यथा,
उनका अनुपालन ही-
सम्बल।
सम्बुद्ध, बुद्ध-शिक्षा अधिगता-
प्रज्ञा-प्रबुद्ध,
अब-राग-द्वेष, परित्यक्त,
हुई सब से विरक्त
परिशुद्धमना विहरणशीला
कामादि-भाव-परिक्षीणा
का, क्या कारण है ?
कर रहे उपस्थित खड़े
मार्ग अवरुद्ध ?

"आविलचित्तो अनाविलं, सरजो वीतरजं अनङ्गणं।
सब्बत्थ विमुत्तमानसं, किं मं ओवरियान तिट्ठसि।

काम-वितर्कादिक-भावों से
अनुप्रेरित
कलुषित-मानस,
है तव प्रवृत्ति-

रागानुरक्त,
मैं रूप वेदनादिक-उत्थित-
भावों को करके
समुच्छिन्न
हूँ अनासक्त।
फिर आये क्यों ?
दुर्वृत्त-भाव तेरे मन में-
संघातक,
आपत्तिजनक-भावानुगमित
हो गये उपस्थित
सहसा ही-
पथ में बाधक

"दहरा च अपासिका चसि, किं ते पब्बज्जा करिस्सति।
निक्खिप कासायचीवरं, एहि रमाम सुपुप्फिते वने।।

स्वर्णकार सुतः
यौवन का यह प्रथम-
चरण तव,
रूपराशि-सम्पन्न-
अनाविल यह तेरा-
लावण्यपूर है वैभव।
है नहीं प्रव्रज्या-हेतु
तेरा-
निष्पाप रूप-वय,

तथा न कथमपि
सुभग वयसि हे।
है उपयुक्त समय
जरा-भाव सम्भावक
यह काषाय वस्त्र-
अनुचित तेरे मधु-यौवन में,
उसको उतार-
आओ विहरें
सुन्दर इस पुष्पित वन में।

"मधुरञ्च पवन्ति सब्बसो, कुसुमरजेन समुट्ठिता दुमा।
पठमवसन्तो सुखो उतु, एहि रमाम सुपुप्फिते वने।।

वन-भूमि सुधर,
सुन्दर तरु-दल,
कुसुमित शाखाएँ
शुचि सुस्मित,
मधु-मन्द समीरण-
स्नेह-घात संस्पर्शित।
सुमन-पराग-रेणु-संवाहित,
प्रथम वसन्तागम का
यह मधु-मास सरस,
विटपावलि-आन्दोलित-सुरभि-
विकीरित-
ओर-छोर, दिशि-दिशि,

एवं कण-कण में
आओ, चले-
संग-संग विहरे
रम्य-रमण-
कुसुमित इस वन में।

"कुसुमितसिखरा च पादपा, अभिगज्जन्तिव मालुतेरिता।
का तुय्हं रति भविस्सति, यदि एका वनमोगहिस्ससि।।

वन-विटप-शिखर
पुष्पित सुन्दर,
मधु-मोद-पूर
सुखरूप सुधर,
मधु-सिक्त-प्रहर,
मद-वायु-समीरित,
सम्प्रेरित,
तरु-शिखरोत्थित,
शुचि स्नेह-राग-
संम्प्रेषित।
मारुत-गति, अविरल
सणत्कार,
संशिलष्ट, स्वरित
रस, राग-सार
है सम्प्रति,

अनुराग-राग-रस,
रसिक काम्य,
तरु-पुष्प-रेणु-
सौरभित रम्य,
पर एकाकी यह-
तेरा वन-विहार,
कर सकता है-
रंच नहीं-
मन-तोष-राग-
संचार।

"वाळमिगसङ्घसेवितं, कुञ्जरमत्तकरेणुलोळितं।
असहायिका गन्तुमिच्छसि, रहितं भिंसनकं महावनं।।

वीहड़ है अतिसघन-
महावन,
सिंह, व्याघ्र बहुशः-
वनप्राणी,
है यत्र-तत्र, करते-
नित विचरण,
करि-करिणी मदमत्त-
भावरत,
और-छोर निर्बाध सतत,
मुद-युग्म-संचरण।
वनदेश रमण-रमणीय

सुधर,
सन्तत निर्जन,
तरु-शाख-विभंजन,
पद-मर्दन,
गज-दल उच्चस्वर,
कोलाहल,
वन जीव-मृगादिक-
भाग-दौड़,
क्षण-प्रतिक्षण-
मचती है हलचल।
सुख-शान्त-क्लान्त
अतिशय भयकर,
इस वन में क्या असहाय,
अकेली-
सकती हो तुम,
कहो बिहर?

"तपनीयकताव धीतिका, विचरसि चित्तलतेव अच्छरा।
कासिकसुखुमेहि वग्गुभि, सोभसि सुवसनेहि नूपमे।।

रूप तुम्हारा-
स्वर्ण कलाकृति कुशल-
कर्मकर-निर्मित,
गुडिका-सम सुन्दर,

रूपाकृतिधर–
स्वर्णभूर्ति–सी–
रही विहर।
दिव्यलोक–कानन–नंदन–
अप्सरा सुधर
सहसा विचरणशीला,
जैसे हो–
रही उतर।
काशी–निर्मित–
शुचि कासायाम्बर,
अतिसूक्ष्म,
सुभग अन्तर्वसन,
मधु आवेष्टित–
सौन्दर्य–सदन,
कमनीय रूप है
अप्रतिम।

“अहं तव वनासुगो सियं, यदि विहरेमसे काननन्तरे।
न हि मत्थि तया पियत्तरो, पाणो किन्नरिमन्दलोचने।।

सुन्दर–यह वन देश
रमण–रमणीय,
तुम्हारा मिले सुभग
सह–चरण,
मुझे है अभिलाषा–

कमनीय।
रहूं बनकर सेवाधर्मिन्
सदा ही मैं तव-
वशवर्तिन्,
एकमात्र प्राणी तुम,
बस, इस भूतल पर,
हे सुभगि! मधुर जीवन की-
हो मधुमय आशा,
तुममें ही संश्लिष्ट
मेरे इस जीवन की
शुचि-परिभाषा।
इसलिए कि तुम
अतिशय प्रियतर,
हो नहीं कोई भी कहीं
सोचता यदि हूँ तो-
तुमसे बढ़कर।
आकर्षक तव अवलोकन,
हे मन्द-सुभग-
किन्नरिलोचन!

"यदि मे वचनं करिस्ससि, सुखिता एहि अगारमावस।
पासादनिवातवासिनी, परिकम्मं ते करोन्तु नारियो।।

स्वीकार करो मम,
प्रस्तावित यदि

वचन,
समुद दो सहमति
ब्रह्मचर्य सेवन-विधि-
अधिगत दुःख निकर,
कर दो तुम अपगत।
कामादिक भव-भोग-वृत्ति-
अभितृप्ति सुलभ,
गार्हस्थ्य-धर्म-प्रति प्रीति-
संगमित,
सुकर सुखद गृहवास,
मंजु विमान-सदृश-
शिखरायित,
शुभ्र रूप प्रासाद-
निवासिनि, सुखोपभोग-
उपकरण,
जहाँ सम्भावित,
दास-दासि परिचरण।

"कासिकसुखुमानि धारय, अभिरोपेहि च मालवण्णकं।
कञ्चनमणिमुत्तकं बहुं, विविधं आभरणं करोमि ते।।

काशिकेय शुचि सूक्ष्मांशुक
स्निग्ध, सुकोमल,
होगा,
तव परिधान,

सुनिर्मित-
भास्वर, कान्ति विमल।
मधुरिम गन्ध-विलेपन-
लेपित-
अंग-अंग सुख-सार
सुचि देह-विभूषित-आभूषण
दीपित दिव्य-अलंकार,
नियोजित, सुरभि, सुवासित वास-भवन
बहुरत्न विरखित।
विविध भांति श्रृंगार-उपकरण
संग-संग संखचित-
संजटित,
माणिक-मौत्तिक-
स्वर्ण-आमरण।
सब होंगे ये
उपहार
प्रार्थना यदि मेरी-
स्वीकार।

"सुधोतरजपच्छकं सुभं, गोनकतूलिकसन्थतं नवं।
अभिरुह सयनं महारहं, चन्दनमण्डितसारगन्धिकं।।

मंजु वितान घौत-रज
निर्मल,
स्वच्छ-धवल-तल,

जहाँ सुभग अनमोल
सुशोभित,
चन्दन काष्ठ-विनिर्मित
शय्या,
बहुविधि चित्रित,
विभव-भूतिमय, अभिनव,
सज्जित,
पिचुतास्तरण मनोरम,
अतिशय सुखद सुकोमल
शुचितम दिव्य अनोपम।
सुरभि-सुवासित
चन्दनादि-
संगमित विविध द्रव।
शुचि शुभ शय्या,
हेतु तुम्हारे प्रस्तुत-
जो सन्तत शोभन,
कर आरोहण,
सुख भोग समुद
तुम करो शयन।

उप्पलं चुदकां समुग्गतं, यथा तं अमनुस्ससेवितं।
एवं त्वं ब्रह्मचारिनी, सकेसङ्गेसु जरं गमिस्सासि।।

उत्पल, कमल, जलज
जिसका
जल से उद्गम,

उद्गमित,
पुनः हो अभिवर्द्धित–
जल–वक्ष–ऊर्ध्वतल,
सुन्दरतम।
उत्फुल्ल, फुल्ल, विकसित–
होकर,
नयनाकर्षक,
लेकिन–
जल–सदन, जलाशय–
संरक्षित,
करते रहते–
राक्षसगण एवं प्राणि इतर,
शिव–अपकर्षक।
परिणाम अत:
रह जाता
उत्पल अनस्पृष्ट,
या अनोपभुक्त,
परिम्लान,
तद्वत् तुम ब्रह्मचर्य व्रतिन्–
ब्रह्मचारिन्
तव देहावयव रह–
अनोपमुक्त अनस्पृष्ट
जराजीर्ण–सम्प्राप्त,
व्यर्थ मधु वय यह,
फिर अवसान।

"किं ते इध सारसम्मतं, कुणपपूरम्हि सुसानवड्ढने।
भेदनधम्मे कळेवरे, यंदिस्वा विमनो उदिक्खसि।।

शुभा :

क्षयी देह यह
इसके हैं संस्कार सभी
क्षयमान,
श्मशान की ओर
सतत है अविरम
यह गतिमान।
स्वर्णकार सुत!
क्षयी कलेवर में–
यह है क्या
श्रेष्ठ सार या सुन्दर,
देख जिसे तुम
आनन्दित
होता विह्वल
अभ्यन्तर।

"अक्खीनि च तूरियारिव, किन्नरियारिव पब्बतन्तरे।
तव मे नयनानि दक्खिय, भिय्यो कामगुणो पवड्ढति।।

स्वर्णकार सुत

वन-मध्य-विहारिणी,

हरिणी-के-से
नेत्र, सुभग-
मृगनयनी,
गिरि-देश-विलासिनि
किन्नरि के नयनों-सम
हैं, तव सुन्दर,
ये नयन सुधर,
करते विमुग्ध,
बढ़ता मेरा कामानुराग,
विह्वल होता-
मम उर-अन्तर।

''उप्पलसिखरोपमानि ते, विमले हाटकसन्निभे मुखे।
तव मे नयनानि दक्खिय, भिय्यो कामरती पवड्ढति।।

कञ्चन-सदृश प्रदीप्त
शुभानन, निष्कलंक-
तव,
ऊर्ध्ववर्तिनी रोमराजि (मृकुटि)
संशोभित,
रक्त-कमल के-
पुष्पकोश से निस्सृत
अंकुर अभिनव।
ऐसे ये करते, हैं-

विमुग्ध–
तव नयन सुधर,
बढ़ने लगता कामानुराग,
आति सहज,
देख, मम अभ्यन्तर।

"अपि दूरगता सरम्हसे, आयतपम्हे विसुद्धदस्सने।
न हि मत्थि तया पियत्तरो, नयना किन्नरिमन्दलोचने।।

मधु–मन्द–लोचने!
किन्नरिसम,
हे चिरकुमारिके।
आयत–अपांग–सम्पृक्त
अमल ये नेत्र शुभे!
दूरस्थ गता होने–
पर भी,
विस्मरण नहीं,
सकता मैं कर,
कारण यह कि–
तव नयनों से–
कथमपि,
कुछ नहीं मुझे
प्रियतर।

"अपथेन पयातुमिच्छसि, चन्दं कीळनकं गवेससि।
मेरुं लङ्घेतुमिच्छसि, यो त्वं बुद्धसुतं मग्गयसि।।

शुभा :

स्वर्णकार सुत, कामिनि-लोलुप
अति अविवेकी-
प्राप्ति-कामना-
बुद्ध सुता औरस धीता की
उसकी,
यह दुरभिलाष,
मन का विलास,
जिस ओर हुए हो उन्मुख तुम,
वह अपथ, विपथ है
उचित नहीं,
कर सको जो उससे
कुछ अधिगम।
क्या सम्भव है-
वन सके क्रीडनक
तव कर का-
वह गगन-सुधाकर,
अथवा पहुँचो तुम
लांघ महागिरि मेरु
छोर पर उसके जाकर।
तद्वत् तेरी,
यह अभिलाषा,

अभिलाषा ही–
होगी केवल,
इस बुद्ध सुता के पाने का,
सारा प्रयास–
होगा, निष्फल।

"नत्थि हि लोके सदेवके, रागो यत्थपि दानि मे सिया।
नपि नं जानामि कीरिसो, अथ मग्गेन हतो समूलको।।

अब रहा नहीं,
रागादि विषय–
कथमपि कोई
सुरलोक तथा इस धरती पर,
कर सके मुझे आसक्त,
सर्वथा हुई–
निर्विषय-मना
वह सब हैं मुझसे
परित्यक्त।
रागादि विषय कैसे ?
क्या है ?
क्या रूप नहीं–
कुछ ज्ञात,
कर लिया नष्ट उनको मैंने
संगमूल तथा सब शाख।

"इङ्गालकुयाव उज्झितो, विसपत्तोरिव अग्गितो कतो।
नपि नं पस्सामि कीरिसो, अथ मग्गेन हतो समूलको।।

अंगार मान, घातक
जन-मन
करता कदापि है नहीं
ग्रहण,
उसका वह-
दहन-मयातुरहो
तत्क्षण-
कर देता प्रक्षेपण।
विष-सेवन का-
प्रभाव है,
होता प्राणान्तक,
कथमपि है नहीं,
पात्र विषका-
आने देता कदापि-
विज तक
रागादि विषय क्या ?
रूप कौन ?
न सकती देख,
न ज्ञात,
कर आर्य-मार्ग-अनुसरण
दिया कर नष्ट उन्हें

संग मूल तथा–
सब शाख।

"मय्हञ्हि अक्कुट्ठवन्दिते, सुखदुक्खे च सती उपट्ठिता।
सङ्खतमसुभन्ति[1] जानिय, सब्बत्थेव मनो न लिम्पति।।

कर लिया विनिश्चय
अब मन में–
रह जागरूक
सम–विषम परिस्थिति
में भी मैं
हो सकूं न विचलित
अपमान–मान
आहलाद तथा हो
यदि विषाद
कथमपि न हो
कुछ पृथक् भान,
अनुकूल भले प्रतिकूल
एवं हो जाये इष्ट
अनिष्ट
रहे समरस–
पर मेरा चित्त।
प्रियता–ममता–सम्मेलकीय
वे वस्तु

राग जो उपजातीं
हैं योग्य परिग्रह या
संचय,
सब हैं कलुषित–
दुःख–सम्भावक
यह ज्ञान मुझे है निश्शंसय।
तृष्णा–रागादि
पराङ् मुख अब,
यह मेरा मन
अन्तिम निश्चय।

''साहं सुगतस्स साविका, मग्गट्ठङ्गिकयानयायिनी।
उद्धटसल्ला अनासवा, सुञ्आगारगता रमामहं।।

शिष्या मैं भगवान् बुद्ध की
शुद्ध उपासिका,
आर्य अष्टांगिक मार्ग रूप
शुभ रथारूढ़
हो रही अग्रसर
धर्म–साधिका।
अष्टांग मार्ग रथयान–
गामिनी,
मेरा होगा–
निर्वाणपुरी गन्तव्य

संपीडक, रागादि रूप–
वाणी से मन संविद्ध–
हुआ अब शुद्ध,
अनाविल भव्य।
आर्यमार्ग–अनुगमित
भाव–भव–शमित,
करू मैं अब
एकान्त विहार,
यही है हर्ष, यही उत्कर्ष,
यही ममहित
आनन्द–उपहार।

"दिट्ठा हि मया सुचित्तिता, सोम्भा दारुकपिल्लकानि वा।
तन्तीहि च खीलकेहि च, विनिबद्धा विविधं पनच्चका।।

कलाकार की दक्ष–कलाकृति
रूप विनिर्मित,
हस्त–पाद सर्वांग
समन्वित।
दण्डादिक उपकरण–
संयोजित,
काष्ठ–पुतलिका,
रज्जु–बद्ध वह
होकर कर्षित

इतस्ततः बहुभांति
प्रचलिता।
सूत्रकार कर सूत्र
ग्रहण
स्वेच्छया किया करता।
कर्षण,
संकेत-भाव का
अनुवर्तन
पुतली करती रहती
नर्तन।

"तम्हुद्धटे तिन्तखीलके, विस्सट्ठे विकले परिक्रिते।
न विन्देय्य खण्डसो कते, किम्हि तत्थ मनं निवेसये।

रूपाकार–विधायक
उसके–
कीलकादि उपकरण,
हो रज्जु त्रुटित–
जो माध्यम है,
गतिका, उसकी
जीवन्त उसी से–
पुत्तलिका,
होता रहता सन्तत कर्षण।
काष्ठावयव-संगमित

किये संयुक्त रहे,
दण्डादिक-संग,
कर दें,
उन सबका विच्छेदन,
खण्डित-त्रुटित
विकीरित-तन,
अस्तित्वहीन,
आकृति-विहीन,
नर्तन-लतिका।
अंग-अंग विच्छिन्न
हो गये
म्लान, पूर्व जो कान्ति
कहो,
कौन-सा अंश,
तुम्हें प्रियतर,
जो है समर्थ,
अन्तर्मन को-
दे सकता शान्ति।
नहीं अब इसका कोई अर्थ,
हुई रूपाकृति अब वह व्यर्थ।

"तथूपमा देहकानि मं, तेहि धम्मेहि विना न वत्तन्ति।
धम्मेहि विना न वत्तति, किम्हि तत्थ मनं निवेसये।

मानव-तन भी है
तथैव यह

भूमि जलानल-गगन-वायु
संगमित,
तथा है-
सुष्ठु विनिर्मित
पुतला सुन्दर
इसका है अस्तित्व,
यथावत्
पंचतत्त्व-जब तक
हैं स्थिर।
हस्त-चरण-मुख-
अक्षि-श्रवण,
ये सुधर देह के अवयव
क्षण-प्रतिक्षण,
उपजाते मन में
उसके प्रति,
आकर्षण।
देह रूप के अंग सभी ये
दृष्टि-विषय हैं
तथा बाह्य पहिचान,
पंचतत्त्व ये धर्म देह के
गुण-लक्षण समवाय
निरन्तर रहते स्फूर्जित,
धर्म सकल हो जाय क्षीण
यदि गुण-लक्षण

सब उज्झित।
निष्पन्द रहे मृत्तिका-लोष्ठ,
गत सौष्ठव,
आंगिक कान्ति,
हाथ, पाव, मुख, नेत्र
कोई क्या ?
है समर्थ दे सके
हृदय को,
हर्ष-बोध-
सुख-शान्ति।

"यथा हरितालेन मक्खितं, अद्दस चित्तिकं भित्तिया कतं।
तम्हि ते विपरीतदस्सनं, सञ्ञा मानुसिका निरत्थिका।।

चित्रकार निज कर्म-कुशल
यदि-
भित्ति-पटल पर
लेपितकर, हरिताल रंग
विलिखित करता,
सर्वांगपूर्णा नारी सुन्दर।
दर्शन-अवलोकन-
भित्ति-लिखित,
नारी-स्वरूप का-
कर देता है-

सुष्ठु उपस्थित–
मनुजाकृति साकार–
कहाँ ? पर हाव-भाव–
मृदु–स्पन्दन,
मानव–स्वभाव-शुचि–
संदर्शन,
यह करता केवल भ्रान्त,
चित्र है
नहीं यथावत्
नारी–मन–संस्कार।

"मायं विय अग्गतो कतं, सुपिनन्तेव सुवण्णपादपं।
उपगच्छसि अन्ध रित्तकं, जनमज्झेरिव रुप्परूपकं।।

अज्ञान–अन्ध, मिथ्या–विवेक
पुत्तली–प्रदर्शन,
छद्म–छलित–
अनुधावन,
निस्सार–वस्तु की ओर,
तुच्छ,
जिसमें आभाषित–
अपनापन।
पर अर्थशून्य
जैसे मायाविक–

माया-बल-
करता दर्शित जनमध्य
रजत की राशि-
रूप-अभिरूपित,
जाता जन अविवेक-प्रभावित
करने अधिगत,
मन में हर्षित।
अनुमान, सत्य-संग
मूल्य महत्
पर मायावत्
हो दृष्ट,
यथा-
स्वानावस्थित-
जन-द्वारा
बहुशः स्वर्ण-विटप।

"वट्टनिरिव कोटरोहिता, मज्झे पुब्बुलका सअस्सुका।
पीळकोकिळा चेत्थ जायति, विविधा चक्खुविधा च पिण्डिता।।

अक्षि युगल,
क्या है स्वरूप ?
क्या इनकी स्थिति ?
लाक्षिक रंग-सुनिर्मित-
गुलिका-

तरु–कोटर–सम,
मध्य प्रतिष्ठित।
पुनः नयन द्वय–बीच
उदक–बुद् बुद्–सम
संस्थित सन्तत,
साश्रु, अतः गुण–भूषित,
नयन–युगल विषगन्ध–
सदृश
जल–बिन्दु रिसाते
रस–पूरित।
जो श्वेत, पीत नीलाम वर्ण–
संग–
अरुण–पटल–आच्छन्न
सतत,
बहु विधि गुच्छायित,
स्रवित गन्ध–विष,
अश्रु–कषायित।

"उप्पाटिय चारुदस्सना, न च पज्जित्थ असङ्गमानसा।
हन्द ते चक्खुं हरस्सु तं, तस्स नरस्स अदासि तावदे।।

पथिक यथा ले भाण्ड
धनादिक–द्रव्यापूरित,
हो तस्कर वन–

गमनशील,
मार्गस्थ मिले–
ले लक्ष्य–
भाण्ड–अपहरण–हेतु
यदि चोर कोई
निष्ठुर–दुःशील
दे पथिक उसे,
होकर निस्पृह–
कर देता–
लोभ–निवारण–
जो अनासक्त,
भव–भोग–राग,
थी चारु–दर्शना,
लोभ–मोह–निरपेक्षमना–
नेकर उत्पाटित
सुभग नयन
दे उसे–
कर दिया नयन–मोह का
निस्तारण।
लो ग्रहण करो–
ये नयन चारु,
तव प्राणेतर;
अवमुक्त करो मम मार्ग
बन्धु! हे,
हर्षित–मन।

"तस्स च विरमासि तावदे, रागो तत्थ खमापयी च नं।
सोत्थि सिया ब्रह्मचारिनी, न पुनो एदिसकं भविस्सति।।

आश्चर्य चकित,
हतबुद्धि,
त्वरित–
वह स्वर्णकार सुत–
क्षुब्ध–हृदय,
अपराध–बोध–आहत
होकर–
अति विनतभाव–स्थित
उसने की क्षमा–याचना
राग हुए अपसरित
अमल–मन,
शुद्ध–भावना।
हे ब्रह्मचर्यव्रत–व्रतिनि!
मेरा–
यह शुभाभिलाष–
हो नेत्र तुम्हारे यथापूर्व–
सुन्दर,
उनमें हो आकर्षण,
होगा भविष्य में–
नहीं पुनः
कथमपि, कदापि
दुर्वृताचरण।

"आसादिय एदिसं जनं, अग्गिं पज्जलितंव लिङ्घिय।
गण्हिय[१] आसीविसं विय, अपि नु सोत्थि सिया खमेहि नो।।

स्वर्णकार सुत
प्रज्ज्वलित-अनल
का लंधन,
विषधर-विष-प्रकृति-
निबन्धन,
दुष्कर, अनिष्टकर मात्र,
नहीं-
है वरन्,
आत्म-अवज्ञानन,
भव-भोग-राग-परित्यक्त,
सर्वथा वीतराग-
जन पुण्य-पुञ्जका
मम कृत यह-
अवमानन।
रागानुरक्ति-परिणाम,
क्षमा, विनय-
कल्याणमयी हे, कृपामयी,
स्वीकार,
करे कृतकृत्य,

हो चुका मूढ़–
यह–
अनासक्त-निष्काम।
''मुत्ता च ततो सा भिक्खुनी, अगमी बुद्धवरस्स सन्तिकं।
पस्सिय वरपुञ्ञलक्खणं, चक्खु आसि यथा पुराणक''न्ति।।

संगीतिकार

भव-भोग-राग से
अननुरक्ति,
अवमुक्ति।
पुण्य का अब उसको–
हो गया बोध,
उस स्वर्णकार–सुत
का था अवरोध
हो चुका अनवरोध।
भिक्षुणी शुभा,
हो गयी मुक्त,
निर्मल चित्ता, निर्बाध–
त्वरित,
होकर प्रस्थित,
सम्मासम्बुद्ध-निकट
जा,

वह थी समुपस्थित।
है पुनर्जन्म यह
पुण्य पुञ्ज,
संदृष्ट महत पुरुषो के
थे हो रहे–
सभी उत्तम लक्षण,
थे चक्षु पुनः उसके शोभन
भास्वर, सुन्दर
जो उत्पाटित
अब यथापूर्व–
ज्योतित–यह देख–
हुए तत्क्षण।

परिशिष्ट

•

थेरियों (कवयित्रियों) का संक्षिप्त परिचय

•

अम्बपाली

वेसालियं राजुय्याने अम्बरुक्खमूले ओपपातिका हुत्वा निब्बति। तं दिस्वा उय्यानपालो नगरं उपनेसि। अम्बरुक्खमूले निब्बत्तताय सा **अम्बपाली**त्वेव वोहरीयित्थ। अथ नं अभिरूपं दस्सनीयं पासादिकं विलासकन्ततादिगुणवि-सेससमुदितं दिस्वा सम्बहुला राजकुमारा अत्तनो अत्तनो परिग्गहं कातुकामा अञ्ञमञ्ञं कलहं अकंसु। तेसं कलहवूपसमत्थं तस्सा कम्मसञ्चोदिता वोहारिका "सब्बेसं होतू"ति गणिकाट्ठाने ठपेसुं। सा सत्थरि पटिलद्धसद्धा अत्तो उय्याने विहारं कत्वा बुद्धप्पमुखस्स भिक्खुसङ्घस्स निय्यादेत्वा पच्छा अत्तनो पुत्तस्स विमलकोण्डञ्ञत्थेरस्स सन्तिके धम्मं सुत्वा पब्बजित्वा विपस्सनाय कम्मं करोन्ती अत्तना सरीरस्स जराजिण्णभावं निस्साय संवेगजाता सङ्खारानं अनिच्चतं विभावेन्ती।

वैशाली। राज उपवन। आम्रवृक्ष-मूल। सहजतः जन्मी। उसे देखा। उदयान-पालक नगर ले आया। आम्रवृक्ष-मूल में जन्मी। आम्रपाली (अम्बपाली) नाम। दर्शनीया, रम्य-रमणीय। प्रियकरी छवि। सौन्दर्यातिशय। बहुशः राजकुमार मोहकरूष से आकृष्ट। उसकी प्राप्ति का निमित्त। परम्पर कलहापन्न। कलह के उपशमनार्थ। उसके (अम्बपाली के) कर्मफल से प्रेरित। सब की हो कहा। गणिका-पद पर प्रतिष्ठित।

शास्ता के प्रति प्राप्त श्रद्धा। निज उद्यान में विहार निर्मिति। भिक्षु-संघ को समर्पित। पश्चात् निज पुत्र विमल कोण्डञ्ञ भिक्षु-सान्निध्य। धर्म का श्रवण। प्रव्रज्या-ग्रहण। विपश्यना (अन्तर्दृष्टि-प्राप्ति-हेतु) प्रयासरत। जरा

जीर्णाक्रान्त निज शरीर को देखा। संवेगाहत। संस्कारों की अनित्यता का अनुभव। सुष्ठुभाव प्रकटाती। उसकी दिव्यवाणी-यह काव्य।

रोहिनी

वेसालियं महाविभवस्स ब्राह्मणस्स गेहे निब्बत्तित्वा रोहिनीति लद्धनामा विञ्ञुतं पत्वा, सत्थरि वेसालियं विहरन्ते विहारं गन्तवा धम्मं सुत्वा सोतापन्ना हुत्वा मातापितूनं धम्मं देसेत्वा सासने पसादं उप्पादेत्वा ते अनुजानापेत्वा सयं पब्बजित्वा विपस्सनाय कम्म करोन्ती न चिरस्सेव सह पटिसम्भिदाहि पापुणि। अरहतं पन पत्वा अत्तनो पटिपत्तिं पच्चवेक्खित्वा पुब्बे सोतापन्न काले पितरा अत्तना च वचन पटिवचनवसेन वुत्तगाथा उदानवसेन भासन्ती-

वैशाली। वैभव सम्पन्न ब्राह्मण-कुल। उस में जन्म। नाम रोहिनी। वय-विवेक-प्राप्ता। शास्ता का वैशाली में विहार (विचरण)। वहां पहुंची। धर्मोपदेश का श्रवण। धर्मोपदेश-सुधा-जल-स्नात। निज माता-पिता को धर्मोपदेश। वे धर्म के प्रति आस्थावान्। सहमत-अनुगत। उन से वह अनुमत। प्रव्रजित। विपश्यना-हेतु (अन्तर्दृष्टि-प्राप्ति-हेतु) कर्मरत। अचिरादेव पटिसम्भिदा (मीमांसपूर्णान ज्ञान) उपलब्ध। अर्हत्व-प्राप्त। निज धर्माचरण-तुष्ट। धर्मपथ-स्रोत-निमग्न। निज पिता संग सम्पन्न वचन-प्रति-वचन पूर्वकाल में। उल्लसित हृदय उनका पुनकर्थन-यह काव्य।

चापा

वङ्गहार जनपदे अञ्ञतरस्मिं मिगलुद्दकभामे जेट्ठक मिगलुद्दकस्सधीता हुत्वा निब्बत्ति, जापातिस्सा नाम अहोसि। अथ खो उपको आजीवको भिक्खाचारवेलायं मिगलुद्दकस्स घरं गतो परिवसितुं उपगतं चापं दिस्वा रागेन अभिभूतो भुञ्जितुम्पि असक्कोन्तो भाजने भत्तं आदाय वसनट्ठानं गन्त्वा भत्तं

एकमन्ते निक्खिपित्वा "सचे चापं लभिस्सामि, जीवामि, नो चे, मरिस्सामि"ति निराहरो निपज्जि। सत्तमे दिवसे मिगलुद्दको आगन्त्वा धीतरं पुच्छि–"किं मय्हं अरहन्ते न पमज्जी"ति? सा एकदिवसंमेव आगन्त्वा पुन नामतपुप्फो'ति माह। मिगलुद्दको च तावदेवस्सवसनट्ठानं गन्त्वा 'किं मन्ते अफासुकन्ति पादे परिमज्जन्तो पुच्छि। जानासि पन, भन्ते, किञ्चिसिप्प'न्ति। सो आह–"नाहं किञ्चि सिप्पं जानामि, अपिच तुम्हाकं मंसहारको भविस्सामि, मंसञ्च विक्किणिस्सामि"ति। मागविको "अम्हाकम्पि एतदेव रुच्चती"ति उत्तरसाटकं दत्वा अत्तनो सहायकस्स गेहे कतिपाहं वसापेत्वा तादिसे दिवसे घरं आनेत्वा धीतरं अदासि।

अथ काले गच्छन्ते तेसं संवासमन्वाय पुत्तो निब्बत्ति, सुभद्दोतिस्स नामं अकुंस। चापा तस्स रोदनकाले "उपकस्स पुत्त, आजीवकस्स पुत्त, मंसहारकस्स पुत्त, मा रोदि मा रोदि"तिआदिना पुत्ततोसनगीतेन उपकं उप्पण्डेसि। सो "मा त्वं चापे मं 'अनाथो'ति मञ्ञि, अत्थि मे सहायो अनन्तजिनो नाम, तस्साहं सन्तिकं गमिस्सामि"ति आह। चापा "एवमयं अट्टीयती"ति ञत्वा पुनप्पुनं तथा कथेसियेव। सो एकदिवसं ताय तथा वुत्तो कुज्झित्वा गन्तुमारद्धो। ताय तं तं वत्वा अनुनीयमानोपि सञ्ञत्तिं अनागच्छन्तो पच्छिमदिसाभिमुखो पक्कामि।

उपके पन पक्कन्ते निब्बिन्दहदया चापा दारकं अय्यकस्स निय्यादेत्वा पुब्बे उपकेन गतमग्गं गच्छन्ती सावत्थिं गन्त्वा भिक्खुनीनं सन्तिके पब्बजित्वा विपस्सनाय कम्मं करोन्ती मग्गपटिपाटिया अरहत्ते पतिट्ठिता, अत्तनो पटिपत्तिं पच्चवेक्खित्वा पुब्बे उपकेन अत्तनो च कथितगाथेयो उदानवसेन एकज्झं कत्वा–

बंगहार जनपद। आखेटकों का ग्राम। प्रधान आखेटक-कुल। कुल बुद्धोपासक-धर्मरत। पुत्री-रूप जन्म। नाम हुआ चापा।

उपक नाम आजीवक। एक दिवस भोजनार्थ उपस्थित। चापा का सुष्ठु रूप-सौन्दर्य। उपक रागासक्त। भोजनं-अरुचि। भोज्य-सामग्री-संग प्रस्थित। निज-निवास-गत। राग-आसक्त-हृदय। भोजन-ग्रहण-विस्मृत। निराहार-संकल्प। चापा-प्राप्ति-प्रतिज्ञा। उसकी अप्राप्ति। निराहार मरण। विषण्ण-म्लान। स्थित।

सप्ताह-अन्त। चापा का पिता। आखेट-निवृत्त। पूछा। आजीवक उपकका वृत्त। चापा का उत्तर। एक दिवस। वह आया। पुनः अदृष्ट। आखेटक उसके घर गया। स्थिति-परिज्ञात। पूछा-उससे। शिल्प का कोई ज्ञान नहीं। किन्तु-। कर सकता हूं आखेट। मांस विक्रय। चापा का पिता। सहमत सन्तुष्ट। प्रदान किया उत्तर साटक। संग घर लाया। पुत्र चापा को उसे समर्पित कर दी।

किञ्चित् कालगत। पुत्र-जन्म। नाम सुभद्द। यदि पुत्र का रोदन। चापा का वचन-उपक-पुत्र! आजीवक-पुत्र! मंसहारक-पुत्र! मत रो। पुत्र को शान्त कराती। उपक यह सुनता। चुप रहता। इस भांति चापा। उपक का उपहास करती। उपक ने एक दिन। कहा। चापा, मत समझ तूं। मेरा आश्रय नहीं। कोई सहायक नहीं। कोई रक्षक नहीं। है अनन्त-जिन। चला जाऊंगा उसके पास। चापा ने अनुभव किया। उपक-मन आहत होता है। वह तथापि पूर्वतः आचरणरत। अन्ततः। एक दिन उपक रुष्ट। गमनोन्मुख। चापा का बहुशः आग्रह। अनुनय। उपक दृढ़ संकल्प। रुका नहीं।

उपक चला गया। चापा व्यथित। पुत्र सुमद्द को। सौंपा। पितामह संरक्षण में। स्वयं भी उपक-मार्गानुगमित। श्रावस्ती उपस्थित। प्रव्रजित। विपश्यना-कर्म-निरत। मार्गानुगमित क्रमशः अर्हत्व-प्राप्त। निज धर्माचरण-प्रवृत्त-तुष्ट। पूर्वकाल में उपक-संग सम्पन्न वार्तालाप। प्रफुल्ल-मानस। एकत्रीकृत व्यक्त-यह काव्य।

सुन्दरी

बाराणसियं सुजातस्स नाम ब्राहम्णस्स धीता हुत्वा निब्बत्ति। तस्सा रूपसम्पत्तिया सुन्दरीति नामं अहोसि। वयप्पत्तकाले चस्सा कनिट्ठभाता कालमकासि। अथस्सा पिता पुत्तसोकेन अभिभूतो तत्थ तत्थ विचरन्तो वासिट्ठित्थेरिया समागन्त्वा तं सोकविनोदनकारणं पुच्छन्तो ''पेतानि भोति पुत्तानी''तिआदिका द्वे गाथा अभासि। थेरी तं सोकाभिभूतं ञत्वा सोकं विनोदेतुकामा ''बहूनि पुत्तसतानी''तिआदिका द्वे गाथा वत्वा अत्तनो असोकभावं कथेसि। तं सुत्वा ब्राह्मणो ''कथं त्वं, अय्ये, एवं असोका जाता''ति आह। तस्स थेरी रतनत्तयगुणं कथेसि।

अथ ब्राह्मणो ''कुहिं सत्था''ति पुच्छित्वा ''इदानि मिथिलायं विहरति''ति तं सुत्वा तावदेव रथं योजेत्वा रथेन मिथिलं गन्त्वा सत्थारं उपसङ्कमित्वा वन्दित्वा सम्मोदनीयं कथं कत्वा एकमन्तं निसीदि। तस्स सत्था धम्मं देसेसि। सो धम्मं सुत्वा पटिलद्धसद्धो पब्बजित्वा विपस्सनं पट्ठपेत्वा घटेन्तो वायमन्तो ततिये दिवसे अरहत्तं पापुणि। अथ सारथि रथं आदाय बाराणसिं गन्त्वा ब्राह्मणिया तं पवत्तिं आरोचेसि। सुन्दरी अत्तनो पितु पब्बजितभावं सुत्वा, ''अम्म, अहम्पि पब्बजिस्सामी''ति मातरं आपुच्छि। माता ''यं इमस्मिं गेहे भोगजातं, सब्बं तं तुय्हं सन्तकं, त्वं इमस्स कुलस्स दायादिका पटिपज्ज, इमं सब्बभोगं परिभुञ्ज, मा पब्बजी''ति आह। सा ''न मय्हं भोगेहि अत्थो, पब्बजिस्सामेवाहं, अम्मा''ति मातरं अनुजानापेत्वा महतिं सम्पत्तिं खेलपिण्डं विय छड्डेत्वा पब्बजि। पब्बजित्वा च सिक्खमानायेव हुत्वा विपस्सनं वड्ढेत्वा घटेन्ती वायमन्ती हेतुसम्पन्नताय ञाणस्स परिपाकं गतत्ता सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि।

सा अपरभागे अत्तनो पटिपत्तिं पच्चवेक्खित्वा पितरा वुत्तगाथं आदिं कत्वा उदानवसेन–

वाराणसी। सुजात नाम ब्राह्मण। उसकी पुत्री रूप जन्मी। रूप सम्पत्ति के कारण नाम-सुन्दरी। वह वय प्राप्त। कनिष्ठ भ्राता काल-कवलित। उसका पिता। पुत्र-शोक-संतप्त। इतस्ततः परिभ्रमित। वासिट्ठी भिक्षुणी से भेंट। उसका प्रश्न। क्या है कारण शोकाभिभूत हो। उत्तर-'पेतानि भोति पुत्तानि' दो गाथाएं। उसका शोकाभिभूत-हेतु। उसने जाना। शमनार्थ-बहूनि पुत्तसतानी'ति दो गाथाएं। कहीं। निज अशोकभाव व्यक्त किया। ब्राह्मण ने सुना, जिज्ञासु बना। आर्ये! तुम्हारा अशोकभाव। कैसे? थेरी (भिक्षुणी ने) त्रिरत्नों का गुण कहा।

ब्राह्मण ने 'कहां है शास्ता? पूछा। मिथिला में विहार-रत। सुनकर। रथारूढ़ मिथिला पहुंचा। शास्ता के समीप। वन्दना कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसे धर्मोपदेश दिया। उसने श्रवण किया। प्राप्तश्रद्धा। प्रव्रजित। विपश्यना-रत संस्थित। प्रयासकृत। दिवस त्रयावधि। अर्हत्व-लब्ध। तत्पश्चात्। सारथी ने रथ चलाया। वाराणसी पहुंचा। ब्राह्मणी को ब्राह्मण की प्रवृत्ति बतायी। सुन्दरी ने पिता के प्रव्रजन-भाव सुना। अम्बे! मैं भी प्रव्रज्या का वरण करूंगी। अनुमत करें। माता ने कहा-इस घर में भोगवस्तु। सब तुम्हारी सम्पत्ति। इस कुल की उत्तराधिकारिणी हो तुम। सबका उपभोग कर। न हो प्रव्रजित।

सुन्दरी ने कहा-मेरे लिए। भोग का कोई अर्थ नहीं। मैं हो जाऊंगी प्रव्रजित। मां। होकर फिर माता से अनुमत। त्याग दिया महती सम्पत्ति। खेलपिण्ड-सदृश। शिक्ष्यमाण होकर। विपश्यना-वृत्ति वर्द्धित की। ज्ञान-परिपक्वता। अर्हत्व-प्राप्त।

पश्चात्। परिकल्पित निर्वाण-सुख। आनन्दित। 'सत्थु पुरतो सीहनादं नदिस्सामि'। एतदर्थ। वाराणसी से निष्क्रमित। भिक्खुनी बहुल संग। क्रमशः श्रावस्ती पहुंची। शास्ता को वन्दन किया। एक ओर संस्थित। अभिनन्दित हुई। स्वागत किया शास्ता ने। निज अर्हत्व का किया उद्घोष। बताया स्वयं को। शास्ता-मुखोद्भूत पुत्री। सर्वथा औरस-सम।

तत्पश्चात्। उसकी माता। मातानुगमित, सेवक, बन्धु-बान्धव। सभी हो गये प्रव्रजित। धर्माचरण-परितुष्टि। सम्प्राप्ता। पितानिगदित गाथा-संगमित। उल्लसितमन कथन किया-यह काव्य।

सुभाकम्मारधीतु

राजगहे अञ्ञतरस्स सुवण्णकारस्स धीता हुत्वा निब्बत्ति, रूपसम्पत्तिसोभाय **सुभा**ति तस्सा नामं अहोसि। सा अनुक्कमेन विञ्ञुतं पत्वा, सत्थु राजगहप्पवेसने[१] सत्थरि सञ्जातप्पसादा एकदिवसं भगवन्तं उपसङ्कमित्वा वन्दित्वा एकमन्तं निसीदि। सत्था तस्सा इन्द्रियपरिपाकं दिस्वा अज्झासयानुरूपं चतुसच्चगब्भधम्मं देसेसि। सा तावदेव सहस्सनयपटिमण्डिते सोतापत्तिफले पतिट्ठासि। सा अपरभागे घरावासे दोसं दिस्वा महापजापतिया गोतमिया सन्तिके पब्बजित्वा भिक्खुनिसीले पतिट्ठिता उपरिभग्गत्थाय भावनमनुयुञ्जि। तं ञातका कालेन कालं उपसङ्कमित्वा कामेहि निमन्तेन्ता पहूतधनं विभवजातञ्च दस्सेत्वा पलोभेन्ति। सा एकदिवसं अत्तनो सन्तिकं उपगतानं घरावासेसु कामेसु च आदीनवं पकासेन्ती "दहराह"तिआदीह्नि चतुवीसतिया गाथाहि धम्मं कथेत्वा ते निरासे कत्वा विस्सज्जेत्वा विपस्सनाय कम्मं करोन्ती इन्द्रियानि परियोदपेन्ती भावनं उस्सुक्कापेत्वा न चिरस्सेव सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि।

राजगृह। शालीन, संस्कारित स्वर्णकार-कुल। पुत्री रूप जन्म। रूप सम्पत्ति-सम्पन्ना। नाम सुभा। सज्ञान हुई। शास्ता का राजगृह में विहार-वास। शास्ता की कृपा। एक दिवस गयी। वन्दन कर एक ओर बैठ गयी। शास्ता ने इन्द्रिय-परिपक्वता देखी। नैतिक-बल का आभास किया। उसकी अभिलाषा का अनुमान किया। चार आर्य-सत्य-दिव्य धर्म का उपदेश दिया। तत्काल।

वहां धर्म पथ-रूप-स्रोत-स्नात। पश्चात्। उसने अनुभव किया। गार्हस्थ्य-जीवन के अलाभ-दुःख। महाप्रजापति गौतमी। उनके पास जा प्रव्रजित हुई। भिक्षुणी शीलादि कर्म। वह प्रतिष्ठित। उत्तम उच्च पथ में प्रवृत्त। समय-समय पर। ज्ञाति जन। बन्धु-बान्धव। उपस्थित होकर। प्रचुर धन। वैभव-भोग। प्रलोभन। दिये। एक दिवस। उपस्थित थे बन्धु-बान्धव। गार्हस्थ्य-जीवन के दुःख। भौतिक जीवन के दुष्परिणाम। दहरा हं० आदि। चौबीस गाथाएं कहीं। धर्म-कथन कर। उन्हें निराश-मन। प्रत्यावर्तित किया।

विपश्यना-(अन्तर्दृष्टि-प्राप्ति-)हेतु। प्रयास-रत। इन्द्रियों की परिशुद्धि-भावना। जाग्रत। उत्प्रेरित। मीमांसापूर्ण। सम्यक् ज्ञान। की। अचिरादेव प्राप्ति। अर्हत्व। उपलब्ध। तत्पश्चात्। यह काव्य।

सुभाजीवकम्बवनिकाथेरी

राजगहे ब्राह्मणमहासालकुले निब्बत्ति, सुभातिस्सा नाममहोसि। तस्सा किर सरीरावयवा सोभनवण्णयुत्ता अहेसुं, तस्मा सुभाति अन्वत्थमेव नामं जातं। सा सत्थु राजगहप्पवेसने पटिलद्धसद्धा उपासिका हुत्वा अपरभागे संसारे जातसंवेगा कामेसु आदीनवं दिस्वा नेक्खम्मञ्च खेमतो सल्लक्खन्ती महापजापतिया गोतमिया सन्तिके पब्बजित्वा विपस्सनाय कम्मं करोन्ती कतिपाहेनेव अनागामिफले पतिट्ठासि।

अथ नं एकदिवसं अञ्ञतरो राजगहवासो धुतपुरिसो तरुणो पठमयोब्बने ठितो जीवकम्बवने दिवाविहाराय गच्छन्तिं दिस्वा पटिबद्धचित्तो हुत्वा मग्गं ओवरन्तो कामेहि निमन्तेसि। सा तस्स नानप्पकारेहि कामानं आदीनवं अत्तनो च नेक्खम्मज्झासयं पवेदेन्ती धम्मं कथेसि। सो धम्मकथं सुत्वापि न पटिक्कमति, निबन्धतियेव। थेरी नं अत्तनो वचने अतिट्ठन्तं अक्खिम्हि च

अभिरत्त दिस्वा, “हन्द, तया सम्भावितं अक्खि”न्ति अत्तनो एकं अक्खि उप्पाटेत्वा तस्स उपनेसि। ततो सो पुरिसो सन्तासो संवेगजातो तत्थ विगतरागोव हुत्वा थेरिं खमापेत्वा गतो। थेरि सत्थु सन्तिकं अगमासि। सत्थुनो सह दस्सनेनेवस्सा अक्खि पटिपाकतिंक अहोसि। ततो सा बुद्धगताय पीतिया निरन्तरं फुटा हुत्वा अट्ठासि। सत्था तस्सा चित्ताचारं ञत्वा धम्मं देसेत्वा अग्गमग्गत्थाय कम्मट्ठानं आचिक्खि। सा पीतिं विक्खम्भेत्वा तावदेव विपस्सनं वड्ढेत्वा सह पटिसम्भिदाहि अरहत्तं पापुणि। अरहत्तं पन पत्वा फलसुखेन निब्बानसुखेन विहरन्ती अत्तनो पटिपत्तिं पच्चवेक्खित्वा अत्तना तेन च धुत्तपुरिसेन वुत्तगाथा उदानवसेन–

राजगृह। ब्राह्मण महासाल-कुल। पुत्री रूप जन्म। उसके शरीर-अवयव। सुशोभित वर्ण-सम्पन्न। सुभा। सार्थक नाम। शास्ता का राजगृह-वास। उसका श्रद्धाभाव। उनकी उपासिका बनी। संसार के प्रति विराग। भोग का दुष्परिणाम। देखा। संसार का त्याग। कल्याणकर अनुमाना। महाप्रजापति गौतमी-सान्निध्य। प्रव्रजित हुई। विपश्यना-(अन्तर्दृष्टि-प्राप्ति-)हेतु-कर्म। सम्पादन-रत। कतिपय-दिवासान्तराल। संसार-निवृति-परिणाम। प्रतिष्ठित हुई।

एक-दिवस। राजगृह-निवासी। एक धूर्त। लम्पट। तरुण-अवस्था। जीवकम्बवन में। दिवा विहार करती। शुभा को। देखा। मार्ग में उपस्थित। मार्गा विरोध में। रागबद्ध। प्रणय-निवेदन किया। विविध भांति। उसने। उसको काम (राग)आदि के दुष्परिणाम कहा। स्वयं को संसार-विरक्त। निवेदन कर। धर्म-कथन। धूर्त ने धर्म-कथन सुना। तथापि स्थिर-स्थित। मार्गावरोध पूर्ववत्। थेरी-वचन अप्रभावी। सुन्दर-नेत्र-प्रति उसकी विशेष रागिता। देखी। एक आंख निकाली। उसको। समर्पित कर दी। वह धूर्त पुरुष। भयत्रस्त। विक्षुब्ध। संपीडित। विगतराग-भक्ति। क्षमायाचना की। चला गया।

भिक्षुणी। शास्ता-समीप। गयी।

शास्ता का दर्शन। प्रभाव। उसकी आंखें। पूर्ववत्। सुन्दर। उसकी। बुद्ध के प्रति। प्रीति-आस्था। निरन्तर। उससे अभिव्याप्त। स्थित। शास्ता ने देखा। उसका चित्ताचार। आश्वस्त-तृप्त। धर्मोपदेश दिया। श्रेष्ठ ध्यान की। शिक्षा दी। आनन्दातिशयित। उसने विपश्यना-(अन्तर्दृष्टि-ज्ञान) को वर्धित किया। मीमांसापूर्णज्ञान-प्राप्त। अर्हत्व-उपलब्ध। अर्हत्व-फल-सुख। निर्वाण-सुख। मुदित-मन। विहार-रत। धर्माचरण-चिन्तन। प्रफुल्ल-मानस। अपनी। धूर्तपुरुष। दोनों की। गाथाओं का पुनकर्थन। यह काव्य।

शिवशंकर त्रिपाठी



जन्म : २० फरवरी, सन् १९३६ ई०।
जन्मस्थान : ग्राम–वेदावली (बेदौली), माण्डा, जनपद–इलाहाबाद
पालि भाषा और साहित्य में डी० फिल्०। हिन्दी, संस्कृत और अंग्रेजी भाषा साहित्य के अधीती। भारतीय मनीषा सूत्रम् के माध्यम से इतिहास, पुरातत्त्व, संस्कृति एवं कला को भारतीय अस्मिता की पहचान संदर्भित करने में संलग्न।

ऋषिकल्प व्यक्तित्व श्री शिवशंकर त्रिपाठी देखने में कुछ विशेष नहीं प्रतीत होते किन्तु उनकी रचनाएँ पढ़ने के बाद अथवा उनके निकट पहुँचने पर यह एहसास होकर ही रहता है कि फक्कड़, प्रकृति एवं प्रवृत्ति वाला यह व्यक्ति

वस्तुतः कुछ विस्मय–बोध समेटे है यह संयोग ही है कि अनगढ़व्यक्ति किन्तु परिष्कृत कृतित्व, सरल–सहज प्रकृति पर गुरु–गम्भीर भाव–अभिव्यक्ति। त्रिपाठी का रचनाकार रूप राष्ट्रीय, सांस्कृतिक भावों में सँवरा है। मानव–मूल्यों का प्रतिपादन तथा संरक्षण–अनुरक्षणोपाय–विवेचन उनके कृतित्व का समग्र है।

त्रिपाठी जी जीवन के चौसठ ग्रीष्म झेल चुके हैं। सातवें दशक में प्रवेश कर रहे हैं और विविध विषयों से सम्बद्ध लगभग तीस कृतियाँ हिन्दी–संस्कृत साहित्य को दे चुके हैं।

कतिपय उल्लेख्य–संस्कृत के प्राच्य कवि मनीषियों के साहित्य में अवतरित लोक–विश्लेषक दर्शन का संदर्शन [illegible] –कवियों की लोक–दृष्टि।

संस्कृत साहित्य का सर्वमान्य काव्येतिहास राजतरंगिणी का साक्षात्कार–**केसर की महक**।

इतिहास, संस्कृति से सम्बद्ध कथा–संकलन–**अतीत की रेखाएँ**।

भारतीय शौर्य को रेखांकित करने वाला छत्रपति शिवाजी का चरित्र–विश्लेषक काव्य–**रक्त के अक्षर**।

तीसरी शती ईसा पूर्व के भारतीय अस्मिता की प्रतिमूर्ति पुरु की गाथा सँजोये हैं–**जयघोष** (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा पुरस्कृत)।

वैदिक काल से बीसवीं शती–पर्यन्त राष्ट्र–संस्कृति का आकलन करने वाली सांस्कृतिक काव्येतिहास कृति–अथ–अनुक्रम

रामकथा–गायक तुलसी पर रचित नाटक–तुलसी महान् (पुरस्कृत)।

पालि जातक का कथा–विश्लेषक काव्य–**सत्य की विजय**।

संस्कृत के अनुपलब्ध अप्रकाशित साहित्य को प्रकाश में लाने की दिशा में प्रयत्नशील–

[illegible] के महाकवि देव द्वारा लिखी गयी अध्येताओं के लिए सर्वथा अज्ञात नायिका–भेद ग्रन्थ–**श्रृंगार विलासिनी** ([illegible] अकादमी उत्तर प्रदेश से पुरस्कृत)।

[illegible]कालीन भारतीय समाज और राजनीतिक परिवेश तथा संस्कृत साहित्य के वर्चस्व भट्टवंश का यश–गाथापरक [illegible] –**भट्टवंशकाव्यम्** (संस्कृत साहित्य अकादमी उत्तर प्रदेश से पुरस्कृत)

[illegible]–विषयक काव्य–**रामकर्णामृतम्**।

[illegible]' संस्कृत गीत काव्य का हिन्दी अनुवाद ([illegible] प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ द्वारा–पुरस्कृत)।

[illegible]मान–**फारसी रामायण** (हिन्दी, अंग्रेजी रूपान्तर सहित सचित्र); **प्रयाग की आत्मकथा** (प्रयाग का [illegible]तिक इतिहास); **सार्वभौग** (पराक्रम समुद्रगुप्त पर आधारित महाकाव्य)। **शीतलच्छाय** (कालिदास पर [illegible]तिक उपन्यास)।

[illegible] पर अद्यतन प्रकाशित **चीनरामायणम्**।